मृत्यु के दूत
कृमि और उनका तत्त्व

कविविनोद वैद्यभूषण
पं० ठाकुरदत्त शर्म्मा वैद्य, लाहौर ।

मूल्य ॥-)

मृत्यु के दूत
कृमि और उनका तत्त्व

लेखक

अमृतधारा के आविष्कारक, देशोपकारक के
सम्पादक तथा अनेक
वैद्यक पुस्तकों के रचियता

कविविनोद वैद्यभूषण

पं० ठाकुरदत्त शर्म्मा वैद्य

पं० हीरानन्द शर्म्मा मैनेजर

देशोपकारक पुस्तकालय अमृतधारा भवन लाहौर ने

अमृत विद्युत् प्रेस लाहौर में पं० ईश्वरदास भार्गव के
अधिकार से छपवाकर प्रकाशित किया

प्रथमवार] सन् १९२० ई० [१०००

कीटाणुवाद (जर्म्ज़ थियोरी) का

आज कल बहुत प्रचार हो रहा है, और इससे अनभिज्ञता के यह अर्थ हैं कि तुम सभ्य संसार के भीतर ही नहीं रहते हो ।

इस पुस्तका में कतिपय कीटाणुओं और उनके संरक्षक कीटों का विवरण है ।

ध्यान लगा कर पढ़िये ।

ठाकुरदत्त शर्म्मा वैद्य ।

प्रस्तावना

यतः मुझे कई बार दक्षिणीय अफ़रीका, भारतवर्ष और दक्षिणी अमरीका में जाने का अवसर प्राप्त हुआ है और इस के अतिरिक्त अन्य उष्ण देशों की भी मैं ने यात्रा की है अतः मुझे बहुत से ऐसे लोगों से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ है जो क्रातिमंडल संबन्धी चिकित्सा शास्त्र की नूतन गवेषणाओं के अनुरागी थे और चाहते थे कि इस प्रकार की एक छोटी सी पुस्तक संकलन की जाये जिस में बड़े २ सिद्धान्त साधारण शब्दों में अंकित हों। मैंने इस पुस्तक में इस मांग को पूरा करने की चेष्टा की है।

इस पुस्तक में यत्न किया गया है कि बहुत से लेखों को संक्षिप्त रूप में एकत्रित कर दिया जाये। कीटाणुओं के सम्बंध में जितनी अभिनव गवेषणायें हुई हैं और जातियों के सुधार तथा उपकार से जितना उन्हें सम्बन्ध है उन सब को साधारणतः पाठकों के सामने उपस्थित करने के अभिप्राय को दृष्टि सन्मुख रक्खा गया है।

इन पत्रों में घातक कीटाणुओं के जीवन का इतिहास और उन की प्रकृति का निरूपण संक्षेप से दिया जा सका है। साथ ही इस बात का प्रयत्न किया गया है कि पारिभाषिक शब्द अधिकता से प्रयुक्त न हों क्योंकि साधारण पाठकों के लिये वे कठिन और मनोरंजन शून्य होते हैं॥

गत २० वर्षों में बड़े २ तत्त्ववेत्ताओं और कार्यकर्ताओं ने संसार के सन्मुख बहुत सी मनोरंजक गवेषणायें रक्खी हैं जो दुखी और पीड़ित लोगों के लिये बड़ा महत्व रखती हैं परन्तु अभी बहुत सा कार्य्य इस प्रकार का करना अवशिष्ट है जिस से क्राति मंडल के देशों से रोगों को दूर किया जा सके॥

रोगज कीटाणुओं की प्रकृति और उन के इतिहास के संबन्ध में संसार के प्रत्येक भाग से बहुत सी बातें ज्ञात हो सकती हैं। और यदि प्रकृति-पाठ के इच्छकों को इस पुस्तक के अध्ययन से विज्ञान की इस विस्तृत शाखा में आनंद प्राप्त होने लगे और खोज करने का विचार उत्पन्न हो जाये तो समझ लिया जायेगा कि ग्रंथ कर्ता का अभिप्राय किञ्चित् पूर्ण होगया है॥

इस पुस्तक के संकलन में बहुत सी पुस्तकों से सहायता ली गई है जिन में से कुछ निम्नलिखित हैं। क्रांति मंडल के चिकित्सा शास्त्र परिषत् की कार्यवाही, क्रातिमंडल की चिकित्सा पत्रिका, ट्रांसवाल की कृषि सम्बंधी पत्रिका। इस के अतिरिक्त बहुत से चित्रों, राजकीय लेखों तथा पत्रिकाओं से सहायता ली गई है और मैं अपने लिवर पोल तथा लंडन के अध्यापकों का भी कृतज्ञ हूं॥

जो लोग चाहें वे इस विषय में सविस्तर विवरण सार्वजनिक पुस्तकालयों (लायबरेरियों) की प्रामाणिक पुस्तकों से प्राप्त कर सकते हैं॥

प्रथम परिच्छेद

कौन २ से कीड़े हमारे मित्र और कौन २ से शत्रु हैं ?

जो लोग प्रशांत मंडल(Temperate Zone) में रहते हैं और जिन्हें कभी क्रान्तिमंडल (Tropies) में जाने का अवसर प्रप्त नहीं हुआ वे नहीं जानते कि उष्ण देशों में कितने अनन्त प्रकार के कीड़े पाये जाते हैं। उष्ण देशों में प्रत्येक पत्ता, प्रत्येक फूल, प्रत्येक जोहड़ और प्रत्येक पत्थर पर विविध प्रकार के कीड़े दृष्टिगोचर होते हैं, और इनके प्रत्येक रूप, प्रत्येक रंग, प्रत्येक प्रकृति और प्रत्येक शब्द से जीवन संग्राम प्रकट होता है। दिन के समय आप को चमकीले पंखों वाले कीड़े एक फूल से उड़ कर दूसरे पर जाते दिखाई देते हैं और जब सूर्य अस्त हो चुकता है तो सुनसान रात में सहस्रों ऐसे अल्प जीवों के शब्द सुनाई पड़ते हैं जो जंगल दलदल वा मैदान में छिपे होते हैं। वास्तव में यह जीव अगणय हैं। मनुष्य के मस्तिष्क तथा विचार में भी उनका गणना नहीं आ सकता। इनमें से प्रत्येक दूसरे पर उत्कर्ष प्राप्त करने के लिये यत्न करता है। इन के क्रम में शासक सैन्यों की विस्तृत सेना है। भवन निर्माण कर्त्ता, वस्त्र बुनने वाले, मातायें, धायें (नरसें) आदि सभी प्रकार के जीव दिखाई देते हैं। और यह सृष्टि जीवित रहने, प्रेम करने, श्रम उठाने, दुःख सहने और मर जाने के लिये उत्पन्न होती है। यही क्रम एक अज्ञात काल से चला आता है और प्रलय काल तक इसी भांति चला जायेगा। प्रत्येक नन्हा किन्तु पूर्ण जन्तु इस जगत् के विचित्र प्रबंध में स्वयं एक गूढ़ व्यक्ति है और काल तथा अन्तर की भांति यह प्रबंध रचना भी सर्वोत्कृष्ट मनुष्य के विज्ञान के बाहर है।

मनुष्य जूं जूं भूमंडल के तल पर फैलता है उसे अपनी सुख-पूर्वकोन्नति के मार्ग में कठिनतायें दृष्टिगोचर होती जाती हैं, यथा प्रकृति की शक्तियां धूप आंधी वर्षा आदि, वन्य पशुओं की ओर से विरोध जिन की भूमि पर वह अधिकारी होता है, और वह कीड़े जो न केवल इसके खेती वाड़ी को बिगाडते हैं प्रत्युत स्वयं इसके लिये भी प्राणघातक सिद्ध होते हैं ॥

कीड़ों का भूमडंल से बहुत घनिष्ट सम्बंध है। और यद्यपि यह बात विचित्र प्रतीत होती है तथापि सत्य यह है कि जहां इन में से बहुत सारे मनुष्य को असीम लाभ पहुंचाते हैं वहां यह भी देखने में आता है कि बहुत से अमित हानि पहुंचाने का हेतु सिद्ध होते हैं। और इस बात का अनुमान करना इतना सुगम नहीं कि इनकी हानियों से इनके लाभ कितने बढ़े हुए हैं।

कुछ भी हो इतनी बात आवश्य है कि वे कई अत्यंत महत्व पूर्ण तथा आवश्यक कार्य्य करते हैं। जैसे एक तो पौदों को परवान चढ़ा कर उन में फल फूल इत्यादि लगाना, दूसरे स्वच्छता प्रथमोल्लिखित के द्वारा पौदों के चिरस्थाई रहने का विशेषण उत्पन्न होता है और इन की विविध जातियों का क्रम सदा के लिये स्थिर रहता है तथा इस से इन पोदों का स्वास्थ्य स्थिर रखने का एक प्रबंध जारी रहता है। मनुष्य के लिये यह विशेषण बहुत महत्व रखना है क्यों कि इसका जीवन का निर्भार ही वनस्पातियों पर है और यदि वह मांस भी खाता है तो ऐसे ही पशुओं का जो स्वयं शाकाहारी हैं। स्वच्छता रखने के लिये भी कीड़ों का अस्तित्व बहुत महत्व का है। इनमें से कोई यथा गुबरीले आदि मलीन पर्दाथों को खा कर ठिकाने लगाते हैं और कोई इस प्रकार के कीटाणु उत्पन्न कर देते हैं जो सड़ांध के भयंकर प्रभावों को नष्ट करदेते हैं। इस के अतिरिक्त यह नन्ही सृष्टि अनेक प्रकार से मानव जीवन के आनंदो को बढ़ाती है, यथा इन में से कोई २ मोम, रेशम और लाख तैयार करते हैं और कोई २ अपने सुंदर और मनोहर रंगों के द्वारा मनुष्यों के मन को लुभाते हैं।

आओ! अब हम इस चित्र के अंधेरे भाग की ओर दृष्टि कर और देखें कि भले बालकों की भांति कार्य्य करने के स्थान में क्योंकर वह हमारे लिये बुराईयों के देव सिद्ध होते हैं।

कीड़े अनेक प्रकार से हानिकारक सिद्ध होते हैं। इनके द्वारा कई बार फ़स्लें (खेतियां) नष्ट होती हैं, अन्न के दानों को घुन लग जाता है। अंगूर को कीड़ा खराब कर देता है और बहुधा असंख्य कीड़े टिड्डी दल के रूप में हरे भरे खेतों को चटियल

मैदान कर देते हैं। दीमक जहां लगती है प्रत्येक वस्तु को सत्यानाश कर देती है और झींगुर और विविध प्रकार के कीड़े भवनों और उसके भीतर की समस्त वस्तुओं को अधिक हानि पहुंचाते हैं।

इसके अतिरिक्त इन पर एक और लांछन लगता है और वह यह कि इनके द्वारा यतः रोगों के कीटाणु एक व्यक्ति से दूसरे तक पहुंचते हैं इस लिये इनसे असंख्य मनुष्यों और पशुओं की हत्या होती है। इसके अतिरिक्त इनके द्वारा औरभी कठिनाइयां सहना पड़ती हैं। इन बातों को छोड़कर बहुधा ये स्वयं भी रोग फैलाने का कारण सिद्ध होते हैं।

हमारा विचार है कि इन पृष्ठों में उन विधियों की व्याख्या करें जिनसे कीड़े रोगों के फैलाने का कारण होते हैं तथा इस जटिल कार्य का भी वर्णन करें जो उनके द्वारा प्रगट होता है। प्रकृति ने घातक कीड़ों की जो विस्मयजनक शरीर रचना की है। उसका भी थोड़ा सा विवरण देने का है।

इस बात का यथार्थ अनुमान करना लगभग असंभव सा है कि कीड़ों के भीतर घातक विशेषण क्यों पाये जाते हैं? केवल यही विचार किया जा सकता है कि प्रकृति ने इन्हीं अयोग्य व्यक्तियों को दूर करने और असीम उत्पत्ति रोकने के लिये इस प्रयोजन से उत्पन्न किया है कि वह विश्व प्रबंध को स्थिर रखने में एक भारी भाग लें एवम् जीवन के इस नियम की पालना में सहायता दें जो "Survival of the fittest" (केवल सब से योग्य प्राणी जीवन संग्राम में जीवित बचेंगे) के नाम से विख्यात है।

नीचे जो सारणी दी जाती है इसे साधारणतः देखने से विदित हो सकेगा कि कितने कीड़े मनुष्यों और पशुओं तक रोगों को पहुंचाते हैं। इसके साथ ही यह भी अंकित कर दिया गया है कि वे इस छूत को क्योंकर एक स्थान से दूसरे स्थान में पहुंचाते हैं।

विविध भांति के कीड़ो की सारणी जिससे ज्ञात होता है कि वे किन २ रोगों को मनुष्यों और पशुओं तक पहुंचाते हैं।

कीड़े का नाम	मानुषिक रोग	पाशविक रोग	घून की विधि वा कीटाणु का नाम
मच्छर	१ मैलेरिया (मौसमी ज्वर)	मैलेरिया (मौसमी ज्वर)	हीमा, मीबा
मच्छर	२ पीत ज्वर		विशेष रोग जिसका नाम अभी रक्खा नहीं गया।
मच्छर	३ फ़्लारियासिस	फ़्लारियासिस	फ़्लारियां
मच्छर	४ डेंग्यू		अमीबार मागीम
सीसी मक्खी	निद्रा रोग		ट्रिप्नो सोमा-गैंबीज
,,		गाना (घोड़ों का रोग)	ट्रिप्नोसो अबरोसी
टीबा पिंडी		सरा (पशु का रोग)	ट्रिप्नोसो अयोनेसी
स्टोमोली सर		मैलेडी कैडवर्स गल्ज़ेक्ट	,, एकोनियम
ह्पिोबोस्का			ट्रिप्नोसो थेलरी
मक्खी	प्लेग (महामरी)	प्लेग (महामरी)	बैसीलिस पिस्टस
घरेलू मक्खी	तीक्ष्ण ज्वर		टायफ़ायड-बैसीलिस
,, ,,	क्षयी (तपेदिक़)		टियूबर्किल बैसीलिस
,, ,,	विशूचिका		कोमा बैसीलिस
रेत की मक्खी	त्र्याहिक ज्वर		अज्ञात
चगर मक्खी	त्वचा रोग		स्वयमरोग उत्पत्ति का हेतु,
ओसरेडी	कीटाणु प्रभाव	पशु रोग	,,
मसेडी	मयासीस	पशु रोग	,,

कीड़े का नाम	मानुषिक रोग	पाशविक रोग	छूत की विधि वा कीटाणु का नाम
टक्स	स्परमलीयर ज्वर	स्परमलीयर ज्वर	स्पारो चीटा
,,	चितकबरा ज्वर		हेमो प्रोटोज़ोन
,,		टेक्सास का पशु ज्वर	पेरो प्लस्मा
,,		कुक्कुटियों के रोग	स्परो चीटा
,,		कुत्तों के रोग	पेरो प्लस्मा
,,		भेड़ों के रोग	अज्ञात
,,		पूर्वीय समुद्र तट का ज्वर	पेरो प्लस्मा
अकारस	जापानी सिन्धु ज्वर		अज्ञात

रोगों के फैलाने में सब से अधिक भाग लेने वाले मच्छर हैं, और इनके विषय में यह प्रमाणित हो चुका है कि वे तीन अत्यन्त भयंकर मानुषिक रोगों को फैलाते हैं, अर्थात् मौसमी ज्वर, फ़लारियासिस और पीत ज्वर और यह भी सम्भव है कि डेंग्यू रोग भी इन्हीं कीड़ों द्वारा फैलता हो।

सीसी जाति की मक्खियां जो प्रायः अफ़रीक़ा में पाई जाती हैं मनुष्य तथा पशुओं को बहुत से घातक रोगों का आखेट बनाती हैं, जिन में प्रायः वर्णनीय निद्रारोग मानुषिक तथा गाना रोग घोड़ों की बीमारी है। मक्खियों की बहुत सी जातियों के विषय में यह बात सिद्ध हो चुकी है कि वे प्लेग के कीटाणु को चूहों से मनुष्य तक पहुंचाती हैं, इन्हीं की कुछ जातियां तीक्षण और अन्य प्रकार के ज्वर एक से दूसरे स्थान में पहुंचाती हैं, और जूओं (यूका) की कुछ जातियां क्षयी (तपेदिक़) के कीटाणु के प्रचार का हेतु समझी जाती हैं। टेक्स को यद्यपि यथार्थ रूप में कीड़े नहीं कहा जा सकता, तथापि वह बहुत बड़ी सीमा तक इन्हीं से

सम्बन्ध रखते हैं और वे पशुओं में स्परमलीयर ज्वर और इसी प्रकार के रोगों को फैलाने का हेतु सिद्ध होते हैं।

इन कीड़ों में जो कीटाणु आदि नहीं फैलाते प्रत्युत स्वयं ही रोगों के हेतु हैं, विशेष वर्णनीय निम्नांकित हैं।

चगर जो मक्खी की जाति का होता है इससे त्वचा में एक प्रकार की शोथ उत्पन्न होती है। डपीड़ा वा दो पर वाली मक्खियों की बहुत सी जातियां जो मयासिस रोग की विचित्र छूत उत्पन्न करती हैं और इनके अतिरिक्त असंख्य कीड़े इसी श्रेणी में आ सकते हैं, जिनके डंक से अनिष्ट फल प्रगट होते हैं।

जिस रीति पर कीड़े पशुओं तथा मनुष्यों तक रोगों को पहुंचाते हैं, न केवल चिकित्सा-शास्त्रानुसार प्रत्युत पशु जाति विद्या के अनुसार भी अत्यन्त कठिन है।

कीड़े निम्नलिखित विधि से रोगों के प्रचार का हेतु सिद्ध होते हैं।

(१) स्वयं कीटाणुओं का काम देकर।

(२) एक दूसरे पुरुष तक कीटाणु को उठा कर पहुंचा कर।

(३) कीटाणु पहुंचाने के मध्यवर्ती दल्लाल बन कर।

प्रथम अवस्था में बहुधा कीड़े इस दृष्टि से स्वयं रोगोत्पादक सिद्ध होते हैं कि वे बहुधा चर्म के नीचे और कभी २ गहरी शिराओं तक मनुष्य और पशु के शरीर में कीटाणु प्रविष्ट कर देते हैं यथा चगर मक्खी जिस का ऊपर वर्णन किया जा चुका है उसकी यह दशा है कि वह टांगों और पांव की त्वचा में छेद करके प्रविष्ट होती है। इस स्थान में वह अपना स्वरूप बदलती, अंडे देती और इस भांति शोथ उपजाती है, जिस से वे भाग जिन में वह प्रविष्ट हो दूषित होने लगते हैं। कुछ और कीड़े यथा एस्ट्रोडी (बक्स और वारबल मक्खियां) अपने लारवा को पाशविक अवस्थाओं की शिराओं और कभी २ मनुष्यों की शिराओं में गुज़ारते हैं, और यही एक मात्र विधि है, जिस में यह विशेष जाति की मक्षिका वृद्धि प्राप्त कर सकती है क्योंकि इनके लारवे मानव शरीरों पर ही वृद्धि प्राप्त करते हैं।

मसेड़ी जाति के बहुत से कीड़े गोबर वा मल के ढेरों पर वृद्धि प्राप्त करते हैं परन्तु कभी २ मनुष्य के नथनों कानों वा व्रणों में भी वर्तमान पाये जाते है । कभी २ इनके अण्ड वा बच्चे अकस्मात् भोजन वा जल द्वारा मानुषिक शरीर में घुस जाते है और मानुषिक अन्तड़ियों में विकास पाते हैं। क्रीमिया, रूस तथा तुरकी की युद्धों में मक्खियों के बच्चों (लाखों) से बहुत कष्ट हुआ था, क्यों कि सैनिकों के इन व्रणों की ओर यदि भली भांति ध्यान न दिया जाता तो उस में बहुत से कृमि वर्तमान पाये जाते थे ।

रोग फैलाने के काम में कीड़ों का दूसरा कार्य यह है कि वह कीटाणुओं को एक से दूसरे स्थान तक ले जाते हैं, जिस के अर्थ यह भी हो सकते हैं, कि वे पहुंचाने वाले औज़ार बनते हैं। यह क्रिया नितान्त साधारण है । एक कीड़ा किसी रोगी मनुष्य वा पशु के शरीर पर अथवा उसके विष्ठा पर बैठ कर अपने साथ कीटाणु ले लेता है, अथवा इसके पांव वा त्वचा के साथ वे कीटाणु स्वतः लग जाते हैं । तदनन्तर वह कीड़ा किसी स्वस्थ पुरुष, भोजन, जल वा पकाने के पात्रों पर जा बैठता है, और यहां वे कीटाणु झड़ कर इस भांति रह जाते हैं कि भली भांति उन्नति कर सकते हैं, और इस रीति से रोग उन्नति करता चला जाता है। साधारण घरेलू मक्खियों के द्वारा विशूचिका, तीक्षण ज्वर, और इसी प्रकार के अन्य रोग प्रायः इसी भांति फैलते हैं ।

अब हम इस तीसरी विधि की ओर प्रवृत्त होते हैं, जिसके द्वारा हमारे शत्रु कीड़े रोगों को फैलाते हैं। ज्ञात हुआ है, कि इनकी विशेष २ जातियां काटीणु को एक से दूसरे स्थान में पहुंचाने का मध्यवर्ती साधन बनते हैं, अर्थात् रुधिर चूसते हुए कीटाणु इनके शरीर में रुधिर के भीतर सम्मिलित हो जाते हैं, और दूसरे का रुधिर चूसते हुए इनके भीतर से वे कीटाणु दूसरे मनुष्यों के रुधिर में मिलते हैं ।

जैसा कि इसी रीति पर मौसमी ज्वर, निद्रा रोग, पीत ज्वर और अन्य बहुत से घातक रोग एक से दूसरे व्यक्ति तक पहुंचते हैं । ये कीड़े सब के सब रुधिर चूसने वाले होते हैं । अब हमारा विचार थोड़े शब्दों में इस रीति की व्याख्या करने का है, जिसके

अनुसार यह जटिल क्रिया फलीभूत होती है। रुधिर चूसने वाला कीड़ा मनुष्य वा पशु की त्वचा में अपनी तीव्र शाखाओं से छेद करके रुधिर चूसता और आमाशय को भरता जाता है। यदि व्यक्ति रोगी हो और इस रोग के कारण से इसके शरीर में कीटाणु पाये जावें, जैसे कि मैलेरिया ज्वर में पाये जाते हैं तो यह कीटाणु भी रुधिर के साथ ही खिचे चले आते हैं, और इस कीड़े के आमाशय में जा पहुंचते हैं। इस कीड़े के आमाशय में रुधिर शुष्क हो जाता है, परन्तु कीटाणु पूर्ववत् वर्तमान रहते हैं और आमाशय को चीर कर कीड़े के भिन्न २ अंगों में जा पहुंचते हैं। इस अवस्था में उनकी प्रकृति आकृति में परिवर्तन होता है, और इस परिवर्तन में कई बार तो कुछ दिन और कई बार कुछ सप्ताह बीतते हैं। इस बीच में वही कीड़ा किसी स्वस्थ पुरुष के शरीर से रक्त चूसने लगता है, और इस भांति वे कीटाणु जो उसकी शाखाओं के साथ लगे हुए होते हैं, रक्तभ्रमण में जा मिलते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि कीटाणु के प्रविष्ट होने से इस स्वस्थ पुरुष को भी वही रोग हो जाता है। इसी भांति एक जटिल रीति पर किसी रोग के कीटाणु एक रोगी पुरुष से स्वस्थ पुरुष के शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। वैज्ञानिकों की परिभाषा में मनुष्य वा पशु इन कीटाणुओं का अन्तिम स्थान और कीड़ा इनका मध्यम पहुंचाने का साधन होता है। एकसोजीनस वा एक्स्ट्रा कारपोरियल साईकल शब्द कीटाणु के जीवन की इस अवस्था के लिये प्रयुक्त होता है जो कीड़े के शरीर में व्यतीत की जावे और इन्डोजीनस वा इन्ट्रा कारपोरियल साईकल उस अवस्था के लिये जो मनुष्य वा पशु के शरीर में व्यतीत हो।

द्वितीय परिच्छेद ।

मच्छरों की उत्पत्ति तथा वृद्धि

समस्त कीट अपने उत्पत्ति तथा वृद्धि के समय में विशेष २ परिवर्तनों में से गुज़रते हैं, जिन्हें परिभाषा में मेटामोरफ़ोसिस (Metamorphosis) अर्थात् कायापलट कहते हैं । विविध जाति के कीड़ों में ऐसे अवसरों पर किंचित्मात्र भेद पाये जाते हैं, परन्तु उपर्युक्त मक्खियां जिन से रोग फैलाने के विषय में हमारा विशेष सम्बन्ध है इन में मेटामोरफ़ोसिस (काया पलट) की अवस्था नितान्त पूर्ण होती है, अर्थात् यह कि योवनारम्भ से पूर्व वे तीन विभिन्न अवस्थाओं से गुज़रते हैं, जिनका व्योरा नीचे लिखा जाता है ।

(१) ओवम वा अंडा ।

(२) लारवा जिसको अंग्रेज़ी परिभाषा में केटरपिलर भी कहते हैं, अंडे से बाहर निकलने के पश्चात् की अवस्था, झांझा ।

(३) निम्फ़ वा प्योपा या करसेतिसचनी पंख निकलने से पहिले की अवस्था, कृमिक, सूंडी, कीड़ा ।

(४) अयागो अर्थात् पूर्ण (पाठक जन ओवम, लारवा, प्योपा और अयागो शब्दों को स्मरण रक्खें) ।

यहां साधारणतः एक विशेष बात का निरूपण करना आवश्यक प्रतीत होता है । कीड़ों के जो नाम विज्ञान शास्त्रानुसार नियत हैं, उन में इन कीड़ों के विशेष २ गुणों से सम्बन्ध पाया जाता है । लारवा वस्तुतः केटर पिलर (अंडे से निकलने के पश्चात् की अवस्था) का नाम है, और इस नाम का विशेष कारण यह है कि रोमन लोगों की सृष्टि विद्या में लारवा उन प्रेतात्माओं का नाम था, जो रात्रि समय क़बरों से निकल कर लोगों को डराया करती थीं और निम्फ रोम की अप्सरोपमा देवियों का नाम था, जिनको प्राचीन काल के लोग बनों पर्वतों तथा जलाशयों की रक्षिका समझते थे ।

विविध जाति के कीड़ों की प्रकृतियां भिन्न २ होती हैं। कुछ कीड़े नित्तान्त जलचर (आबी) होते हैं जिस का आशय यह है कि वे अपनी समस्त अवस्थाओं में जल के भीतर ही रह कर बढ़ते हैं। कोई २ ऐसे हैं जो नित्तान्त स्थल पर ही कालक्षेप करते हैं। ऐसे कीड़े भूमि के भीतर छेद करके उस के अन्दर रहते हैं और वहां मल तथा गोबर आदि पर पलते हैं। कईयों की अवस्थायें पौदों पर बदलती हैं, और कोई २ पशुओं के शरीरों पर बढ़ते हैं। तत्वतः विविध जाति के कीड़ों में वृद्धि की भी भिन्न २ विधियां पाई जाती हैं और यह अन्तर इनकी प्रकृति तथा पड़ोसों की सीमा तक भी पहुंचती है। रोगों को एक से दूसरे स्थान तक पहुंचाने वाले कीड़ों का वर्णन करते हुए हम वृद्धि की अवस्थाओं के विशेष मनोरञ्जनों को स्पष्ट करने का यत्न करेंगे और विशेष रूप से इन प्रकृतियों और विशेषणों का निरूपण करेंगे, जो इन रीतियों के विचार से विशेष महत्व रखते हैं जिन के द्वारा इनका मूलोच्छेदन किया वा इन्हें सीमा से अधिक फैलने से रोका जा सकता है।

इन समस्त घातक कीड़ों में जो रोगों के कीटाणु अपने साथ रखते हैं और इस प्रकार से उन्हें एक से दूसरे प्राणी तक पहुंचाते हैं, मच्छर का पद निस्सन्देह सब से बढ़ा हुआ है। मच्छर के विषय में यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि यह न्यूनातिन्यून तीन अत्यन्त घातक और प्रायः सामान्य फैले हुए रोगों को एक से दूसरे स्थान तक पहुंचाता है और वे तीन रोग यह है।

(१) मैलेरिया वा ऋतु ज्वर (२) पीत ज्वर और (३) श्लीपद (फ़ीलपा)। मैलेरिया (जिसका डाक्टरी नाम एग्यू भी है वा शीत लग कर होने वाला ज्वर) प्रायः समस्त क्रांति मंडल अथवा इस के समीपस्थ देशों में पाया जाता है। प्रति वर्ष इस से इतने व्यक्तियों की मृत्यु होती है जितनी किसी और रोग से नहीं होती, और कभी २ इस दुष्ट रोग द्वारा समस्त देश के कला कौशल एक दम रुक कर रह गये हैं। न केवल इससे यहां असंख्य लोग मरते हैं प्रत्युत समस्त लोग जो उष्ण देशों में जाते हैं इससे बहुत कम बच सकते हैं। इस रोग के आक्रमणों से अधिक से अधिक बलवान स्त्री पुरुष

का शरीर दुबले हो जाता है। इससे बालक वा वृद्ध कोई भी नहीं बच सकता। रोग के नक़शे को एक बार देख लेने से विदित होता है कि संसार भर में मैलेरिया वा ऋतु ज्वर का कितना ज़ोर है। पीत ज्वर भी बहुत से देशों में पाया जाता है। यह एक अत्यन्त घातक रोग है, और प्रति वर्ष कई सहस्र लोग इसके हाथों काल का ग्रास हो जाते हैं।

श्लीपद (फ़ीलपा) एक ऐसा रोग है, जो उष्ण देशों तक ही सीमाबद्ध है जहां इसके कारण से लाखों को अनन्त आपत्तियों का सामना करना पड़ता है। यह रोग देशी निवासियों को ही होता देखा गया है, अर्थात् वहां के रहने वाले लोगों पर।

(पाठकों को ज्ञात रहे कि जगन्नाथ पुरी आदि का अण्ड वृद्धि आदि रोग इसी रोग की जाति से हैं। अनुवादक)

मच्छर एक प्रसिद्ध दो पंखों वाला कीड़ा है और परिभाषा में इस भांति के कीड़ों को जिनसे इसका सम्बंध है इसे डिपृरिया कहते है। स्वतः मच्छरों को परिभाषा में क्यूलिसिडी कहा जाता है।

मच्छरों की पांच सौ वा इससे भी अधिक ज्ञात जातियां हैं। कीट शास्त्राभिज्ञों ने इन जातियों को भिन्न २ श्रेणियों में विभक्त किया है, जिनकी आगे चलकर और छोटी २ कक्षायें नियत की गई हैं। मच्छरों में एक दूसरे से पंखों के अन्तर तथा कतिपय अन्य बातों की दृष्टि से भेद पाया जाता है, और प्रोफ़ेसर थियोबोल्ड ने इनका विभाग भी इसी दृष्टि से किया है। मच्छरों की केवल कुछ एक जातियों ही भिषक् संसार के मनोरंजन का कारण हो सकती हैं। इनमें भी विशेष रूप से निरूपणीय वह छोटी श्रेणी है जिसे अनाफ़ोलीज़ कहते हैं और जिनका सम्बंध मैलेरिया ज्वर के कीटाणु को एक से दूसरे स्थान तक फैलाने से है। मच्छरों की दो और श्रेणियां सिटेगोमिया और क्यूलेक्स नामी हैं, जो क्रमशः पीत ज्वर तथा श्लीपद के कीटाणुओं को फैलाती है।

मच्छरों की उत्पत्ति तथा वृद्धि के लिये जल की उपस्थिति आवश्यकीय वस्तुओं से है। मादा सदा जल पर अंडे देती है, और बिना जल की उपस्थिति के इन से बच्चे निकलने भी असम्भव हैं। इनके अनन्तर उत्पत्ति तथा वृद्धि की दूसरी अवस्थायें भी जल

ही में गुज़रती हैं। लारवा और प्यूपा दोनों जल में भली भांति तैर सकते हैं, और बिना जल के रह ही नहीं सकते।

यही कारण है कि मच्छर प्रायः उन्हीं स्थानों में पाये जाते हैं, जहां बहुत स्थिर जल एकत्रित रहता है यथा दलदल जोहड़ आदि में। इस विषय में यह देखना मनोरंजन से शून्य नहीं होगा कि ऐसे स्थानों पर ऋतु ज्वर साधारणतः बहुत फैला होता है, जब कि शुष्क प्रान्तों में जहां जल दुषप्राप्त है, और शीघ्र सूख जाता है, बहुत ही कम ऋतु ज्वर फैलता है।

एक और बात भी विचारणीय है। यद्यपि मच्छरों की ज्ञात जातियां ५०० हैं तो भी यह बात प्रमाण कोटि को पहुंच चुकी है कि इन में से केवल कुछ एक ही ऋजु ज्वर, पीत ज्वर तथा श्लीपद रोग फैलाने का हेतु सिद्ध होती हैं। यही कारण है कि बहुधा देशों यथा इङ्गलैण्ड में यद्यपि मच्छर अधिकता से पाये जाते हैं तथापि यह रोग इस कारण से लुप्त है कि वे विशेष जातियां जो रोग प्रचार का हेतु बनती हैं वर्तमान नहीं हैं।

मादा मच्छर किसी उचित बन्द स्थिर जल खंड पर अण्डे देती है यथा कभी २ किसी दलदल पर, कभी किसी रुके हुए छोटे से जल खण्ड पर, और कभी २ उस जल पर जो किसी पात्र आदि में एकत्रित हो यथा लोटे घड़े वा टीन के पीपे में जो जल कभी २ एकत्रित हो जाता है।

साधारणतः अण्डे एक २ करके अथवा समुच्चय रूप में दिये जाते हैं। अनाफ़ोलीज़ एक २ करके अण्डे देते हैं, दूसरी जाति के यथा क्यूलेक्स ऐसी रीति पर एक स्थान में अण्डे देते हैं कि वे मिले हुए नौकाओं का रूप धारण कर लेते हैं। अण्डों की रचना बहुत मनोरंजक होती है और इससे ज्ञात होता है कि प्रकृति ने सन्तति रक्षा के लिये अण्डों को कैसा पूर्ण और सुन्दर बनाया है। इन अवस्थाओं में जब कि अण्डे एक ही स्थान में दिये हुए हों जैसे क्यूलेक्स आदि जातियों के मच्छर करते हैं तो वे एक दूसरे से एक प्रकार के सीमेंट से मिले हुए होते हैं, कि इन अंडो से जो एक सिरे पर दूसरे की अपेक्षा मोटे होते हैं, ऐसी नौका बन जाती है, जैसा कि लकड़ी के लट्ठों को बांध कर

ले जाते हैं, और वायु इन्हें इधर उधर चलायमान कर सकती है। इन समुच्चयों में बहुधा ५० से ४०० तक अण्डे होते हैं और यह भेद मच्छर की जाति पर निर्भर होता है। जब अण्डे एक २ करके दिये हुए हों, जैसे अनाफ़ोलीज़ जाति के रूप में होता है, तो प्रत्येक की आकृति सुन्दर होती है, जो कि छोटी नौका के सदृश होती है, और इन की रचना में इस प्रकार के विशेषण वर्तमान होते हैं और बेलों के सदृश ऐसी रचना होती है, कि अण्डे टूट नहीं सकते।

जो अण्डे एक २ करके दिये जाते हैं कुछ अवस्थाओं में बह कर एक दूसरे के समीप चले आते हैं और इन से किसी रचना के से रूप बन जाते हैं परन्तु इस का कारण जल का तलाकर्षण मात्र होता है।

अण्डे प्रायः प्रातः समय दिये जाते हैं। एक माता अपने जीवन काल में कई सहस्र अण्डे दे सकती है।
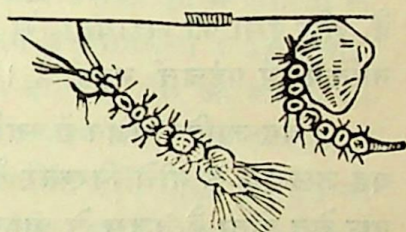
क्यूलेक्स मच्छर अण्डों का समूह लारवा निम्फ़ आदि जिन की आकृति ६ गुना बढ़ा कर दिखाई गई है।

ग्रीष्म ऋतु में साधारणतः दो तीन दिनों में अण्डों से बच्चे निकल आते हैं परन्तु शीतकाल में इसकी उत्पत्ति तथा वृद्धि की क्रिया बहुत कुछ रुक जाती है। अण्डे के टूटते ही इसमें से लारवा निकल कर भोजन ढूँढने के लिये इधर उधर तैरता फिरता है। इस अवस्था में उसका मुख्य आहार जल के पौदों के छोटे २ अणु और इसी प्रकार के अन्य पदार्थ जो जल में पाये जाते हैं होते हैं। कुछ जातियों में लारवे दूसरी जाति के सूक्ष्म कीटों को जो इसी जल में पल रहे हों शीघ्रता से निगल जाते हैं। रंग रूप में मच्छर का लारवा लंबोतरी आकृति का होता है, जिसके तीन भाग होते हैं, सिर छाती तथा शरीर। शरीर के ९ भाग होते हैं। सिर के बाहर की ओर मुख के भाग निकले हुए होते हैं जहां दो नीचे के जबड़े

और दो ऊपर के जबड़े होते हैं। शरीर से बहुत सी शाखायें निकली होती हैं, जिन में से वह जो मुख के निकट होती हैं, निरन्तर भोजन ढूंढने का प्रयत्न करती रहती हैं। इन लारवों की दो भिन्न जातियां होती हैं, अर्थात् एक तो वह जिन में साईफ़न नालियां वर्तमान होती हैं और दूसरी वह (अनाफोलीज़ लारवा) जिन में साईफ़न नालियां वर्तमान होती हैं।

साईफ़नदार लारवी एक कोण पर जलपृष्ठ के नीचे इस भांति तैरते हैं कि इनकी साईफ़न युक्त नाली जल से बाहर निकली रहती है, और इसी की सहायता से वायु इन के शरीर की विविध नालियों में पहुंचती रहती हैं।

वह जातियां जिन में साईफ़न की नाली वर्तमान नहीं होती वह जल तल के नीचे निरन्तर तैरती है। इन के उदर के भागों में एक छेद होता है, जिस से बाहर की वायु भीतर आती जाती रहती है, और दूसरी ओर इस का सिरा शरीर के भीतर सांस की नाली से मिला होता है।

इस से ज्ञात हो गया होगा कि मच्छरों के लारवे के सांस लेने की दो भिन्न रीतियां होती हैं। यह अभिज्ञान इस दृष्टि से प्रयत्न उपयोगी है कि मच्छरों को नष्ट करने में इस से बहुत कुछ सहायता मिलती है। जल पर तैल डालते समय लारवे की सांस लेने की नालियों का मुख रुक जाता है, और इस भांति वह दम घुट कर मर जाते हैं।

भिन्न २ जलचर जीवों का भोजन यही लारवा होते हैं। यह छोटी मछलियों, मैंडक के बच्चों, अन्य कीड़ों के लारवी और जलीय टिड्डों का मन भाता खाजा हैं। इन प्राकृतिक बैरियों से अभिज्ञ होना इस दृष्टि से बहुत उपयोगी है कि जहां मच्छर बाहुल्य से हों वहां इन्हें प्रविष्ट कर देने से इनकी सन्तति बहुत कुछ घट जाती है।

अब हम स्वरूप परिवर्तन की तृतीय कोटि पर पहुंचते हैं, अर्थात् उस समय जब कि लारवा निम्फ़ का रूप धारण कर लेता है। मच्छर निम्फ़ों का स्वरूप विशिष्ट होता है। यह विचित्र छोटे २

जीव होते हैं। सिर आगे को निकला होता है, आंखें यथा प्रमाण स्थूल तथा श्याम होती हैं, और शरीर तथा पूंछ इस भांति मुड़ी हुई होती है, कि रंग रूप में यह उबाली हुई श्रम्प मछली के सदृश होता है।

निम्फ़ वा प्यूपा की अवस्था लगभग ४८ घंटे रहती है, और दूसरे कीड़ों यथा तितली आदि की क्रसिलस अवस्था (सूंडी) के सदृश होती है। इस बीच में वह कुछ खाता पीता नहीं, प्रत्युत एकमात्र इतस्ततः तैरता रहता है, और उसकी देह में शीघ्रता से परिवर्तन होते रहते हैं। यह उन साईफ़न युक्त नालियों के द्वारा सांस लेता है, जो इसके धड़ से निकली हुई होती है, और जो लारवे की भांति जलपृष्ठ से ऊपर वाली वायु को अंदर लेती तथा निकालती रहती हैं। जब निम्फ़ की अवस्था परिवर्तित होने वाली होती है तो यह एकाएकी सीधा हो जाता है, जिससे इसका कोमल चर्म फट जाता है, जिसके भीतर से पूर्ण और तैयार मच्छर निकल आता हैं, कई घंटों तक मच्छर अपने पुरातन आच्छादन पर बैठा जल पर तैरता रहता है, और जूं ही इसके बाहु और टांगें भली भांति सूख जाती हैं उड़ जाता है।

तृतीय परिच्छेद

प्रौढ़ मच्छर की कथा

मच्छर का निरूपण करते हुए हम समस्त क्यूलिसीडी जाति की साधारण रचना का निरूपण करने पर सन्तोष करेंगे, क्योंकि जाति भेद बहुत ही साधारण से होते हैं।

जो व्यक्ति चाहे इस विषय में आलोचन तथा परीक्षण करके देख सकता है। अवश्यकता केवल इस बात की है कि उक्त व्यक्ति को इन विषयों से अनुराग हो। इस प्रकार के अनुभव खुले मच्छरों के साथ अथवा उन्हें अलग रख कर किये जा सकते हैं। वर्षा जल से भरे हुये गढ़ों, जौहड़ों तथा दलदलों में अण्डे, लारवी तथा निम्फ़ बहुतायत से प्राप्त हो सकते हैं। स्वतः मच्छरों को पकड़ने की विधि यह है कि रात के समय एक हल्का सा प्रकाश लालटैन के श्वेत तल पर डाला जावे। इस अवस्था में जहां तक इस प्रकाश का मंडल हो उसकी सीमा पर मच्छरों को पकड़ लिया जा सकता है जिसके पश्चात् इन्हें बोतलों बक्सों आदि में भर सकते हैं। इङ्गलिस्तान में इन्हें यथा प्रमाण उष्ण भागों में पकड़ा जाता है।

इन कीड़ों की परीक्षा के लिये एक उत्तम शक्ति के एक पदार्थ को बड़ा करके दिखाने वाले आतशी शीशे की अवश्यकता होती है, जिसे जेब में रक्खा जाता है। अधिक सूक्ष्मता के लिये एक अणुवीक्षण यंत्र रखना चाहिये।

इन और इसी प्रकार के अन्य विचित्र रचना के कीड़ों का स्वाध्याय करने में बहुत सा समय लाभ तथा आनंद के साथ व्यतीत किया जा सकता है।

मच्छर की शारीरिक रचना दो पंखों वाली मक्खियों की भांति होती है। केवल इतना विशेषण अवश्य पाया जाता है, कि मच्छर के मुंह का अग्र भाग लम्बा तथा धंस जाने वाला अर्थात् छेद करने वाला होता है, जिसको प्रोबोसिस (Proboscis) कहते हैं।

शरीर को देखने से स्पष्टतयः विदित होता है कि इसके तीन भाग हैं, एक सिर, दूसरा छाती, तीसरा पेट। सिर नितान्त छोटा सा होता है और इसके दोनों ओर दो अत्यंत बड़ी काली आंखें होती हैं। प्रायः कीटों की भांति ये आंखें रचना की दृष्टि से मिश्रित होती हैं जिसका अभिप्राय यह है कि इनमें बहुत छोटे २ से साधारण लेन्ज़ (शीशे) लगे होते हैं। जो एक दूसरे के पास २ लगे होते हैं। सम्भवतः इन आंखों की सहायता से वे बहुत अन्तर के पदार्थों को देख सकते हैं, और विशेष कर यह क्षितिज प्रकाश में काम लेने के लिये युक्त होती हैं।

प्रौढ मच्छर जो उड़ सकता है। चित्र वास्तविक आकृति से १⅓ गुणा बड़ा है।

सिर में से प्रोबोसिस बाहर की ओर निकले हुए होते हैं। इनकी रचना अत्यंत जटिल होती है, तथापि संक्षेपतः हम कह सकते हैं कि इसके विशेष भाग होते हैं। लैबयम वा निचला होंट एक मोटा सा भाग होता है। यह एक प्रकार की नाली के रूप में वा ढाल की भांति होता है, और जो मुख का अग्र भाग छेद करने वाला ऊपर वर्णन किया गया है, इस के छः भागों को घेरे रहता है। छेद करने वाली शाखाओं को स्टाईलट कहते हैं। इन स्टाईलट में दो नीचे के जबड़े होते हैं, जो छेद करने वाली सूइयों का काम देते हैं। दो ऊपर के जबड़े जो नीचे वाले के सदृश होते हैं, परन्तु इन में तीव्र नोकें लगी होती हैं, और हाई पोफ़ोरिंक्स (कंठ के पास वाली नाली का यह नाम है) जो वास्तव में एक बहुत सूक्ष्म साधारण नाली होती है जिसके मार्ग से कीड़े का थूक उस समय

(मच्छर की अभ्यन्तरीय शारीरिक व्याख्या)

व्रण में प्रविष्ट होता है, जब मच्छर नोकदार सूइयां चुभो चुकता है । इनके अतिरिक्त दो चीज़ें वे भी होती है, जिन्हें ऊपर के जबड़े के पालप कहते है । उस चिन्ह से जो इस लेख के साथ दिया गया है, अधिक स्पष्टता के साथ यह बात ज्ञात हो सकती है कि इस विचित्र मुख की रचना कैसी होती है ?

प्रोबोसिस के दोनों ओर दो पा टटोलने वा छूने वाली शाखायें जिन्हें ऐंटेनी कहते है दिखाई देती हैं । नर में इन में पर पंख से लगे होते हैं, परन्तु मादा में ये साधारण से देखने में आते हैं । यही कारण है कि इनकी सहायता से जाति की पहचान सुगमता से हो सकती है । ऐंटेनी की पहचान बहुत सुन्दर होती है, और जो लोग इस अणुवीक्षण यंत्र की सहायता से देखें वे जान सकते हैं कि प्रकृति कैसी मनोहर कारीगरी करती है । सिर के पीछे इस कीड़े का वह भाग होता है, जिसे थोरेक्स वा छाती (धड़) कहते हैं । इसके भीतर छः थूक उत्पन्न करने वाली ग्रन्थियां होती हैं, जिनका सम्बन्ध छोटी २ नालियों के द्वारा प्रोबोसिस के इस भाग से जिसका वर्णन ऊपर हाईपोफ़ारेंक्स के नाम से हो चुका है मिलता है । इस स्थान में यह वर्णन करना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि रोग के कीटाणु मच्छर के पेट से लेसयुक्त ग्रन्थियों में जा पहुंचते हैं, और इसके पश्चात नालियों तथा हाईपोफ़ारिंक्स के द्वारा मनुष्य के रुधिर में उस समय जा पहुँचते हैं, जब कि वह काटता है । अविदित न रहे कि काटने की क्रिया वस्तुतः रुधिर चूसने के लिये स्टाईलेट के द्वारा शरीर में छेद करना होता है ।

छाती के निचले भाग के साथ इस कीड़े की छे टांगें लगी होती हैं । उन में से प्रत्येक ९ भिन्न २ भागों पर विभक्त होती हैं, और अन्त में दो छोटे २ पंजे वा नाखुन लगे होते हैं ।

छाती के ऊर्ध्व भाग के साथ दो पंख लगे होते हैं । यह झिल्ली दार होते हैं और इनके कुछ भाग विविध आकृतियों के

छोटे छिलकों से ढंपे हुए होते हैं, और दृढ़ता के लिये इन में छे लम्बी पसलियां वा रगें भी होती हैं, पंखों और शरीर के छिलकों और उनकी रंगत ही के द्वारा बहुधा कीटशास्त्रवेत्ता इन कीड़ों को विविध जातियों में विभक्त कर सकते हैं।

पंखों की जिस स्थान पर शरीर से संधि होती है, उसके ठीक पीछे दो छोटी २ रचनायें होती है, जिन्हें हाल्टर व बैलेंसर कहा जाता है। यह आरंभिक रचनायें होती हैं और आवरणों (परदों) से इस अन्तिम जोड़े को प्रगट करती हैं, जो कीड़ों की अन्य जातियां यथा भुनगों तथा तितलियों में पाई जाती हैं। हाल्टर को बड़ी सुगमता के साथ इस स्वरूप में देखा जा सकता है, कि साधारण घरेलू मक्खी को एक लेन्स की सहायता से देखा करें, जो साधारण रचना की दृष्टि से मच्छरों के सदृश होती है, क्योंकि ये दोनों वस्तुतः दो पंखों वाले कीड़ों की महती जाति ही से सम्बन्ध रखते हैं। बैलेंस को स्थिर रखने के अतिरिक्त हाल्टर और क्या काम देते हैं, यह विदित नहीं हो सका किन्तु अनुमान है कि इनका जीवन से कुछ न कुछ सम्बन्ध होता है।

मच्छर का पेट वा शरीर का पिछला भाग ९ भिन्न भागों पर विभक्त होता है और इस में आमाशय तथा पेट के अन्य अंग और आंतें तथा जननेंद्रिय होते हैं।

मशक माता का सिर और प्रोबोसिस जिसे ६॥ गुना करके दिखाया गया है (१-२) एँटेनी (३) मेक्सली (४-५) मैन्डेबल (६) लेबरम (७) हाईपोफ़ारिंक्स (८) लेबियम (९) सिरके छिलके (११) पालपी।
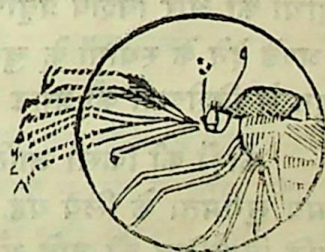
इस कीड़े की आभ्यंतरीय रचना इतनी जटिल नहीं होती। मुख, कंठ भी भोजन की नाली के द्वारा एक दृढ़ शिरापम्प करने के अंग (फेफड़ा समझिये) से मिला हुआ होता है। इससे आगे इसका जोड़ एक लंबोतरे आमाशय के साथ होता है, जो

कोलन अथवा बड़ी आंत में जाकर खुलता है । इसके अतिरिक्त कोलन में ५ लंबी तहदार नालियां होती हैं, जिन्हें माल पेघियन नालियां कहते हैं ।

इन्हें बड़े पशुओं के गुर्दों के सदृश समझना चाहिये । आमाशय के नीचे और भोजन की नाली में खुलती हुई एक खोखली रचना होती है, जिस में खाया हुआ पदार्थ एकत्रित रहता है ।

यह सब अङ्ग कीड़े के रक्त में डूबे हुए होते हैं और इन में प्राण वायु (आक्सीजन) के प्रवेश का मार्ग वायु की जटिल नालियों के द्वारा होता है, जो सब दिशाओं में फैली हुई होती हैं और इन का सम्बन्ध सांस लेने के छिद्रों से होता है, जो छिद्र कि कीड़े के शरीर में भिन्न २ स्थानों पर वर्तमान होते हैं ।

पूरे प्रौढ़ होने के पश्चात् मच्छर जिन अवस्थाओं में से गुज़रता है वे मनोरञ्जन से रहित नहीं । जीवन के उच्च कोटि के दूसरे प्राणियों के सदृश मच्छर की प्रत्येक जाति में कई विशेषण पाये जाते हैं, यथा विशेष प्रकार के स्थान में रहने और कुछ भोज्य पदार्थों की ओर विशेष प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है । इसके अतिरिक्त वे अण्डे देने के स्थानों के चुनने, तथा मध्यान्तर इत्यादि में भी बहुत से विशेषणों को प्रगट करते हैं ।

कीड़ों की किसी जाति के स्वभावों का प्रतिपादन करते समय सुगमता के लिये यह बात सर्वोत्कृष्ट होगी कि कोई विशेष जाति निर्वाचित की जावे और उसके स्वभाव तथा विशेषणों से समस्त की प्रकृति का अनुमान किया जावे । इस प्रयोजन के लिये हमें अनाफ़ोलीज़ जाति का विवरण देना सर्वतोश्रेष्ठ होगा ।

मैलेरिया मच्छर वा अनाफोली मच्छर के स्वभाव आदि

मच्छर वास्तव में रात्रि कीट होते हैं । वे दिन के समय छिपे रहते हैं, क्योंकि प्रकाश से इन्हें स्वभावतः घृणा है । यतः वे अन्धकार और गुप्त स्थानों में छिपे रहते हैं और उस समय की प्रतीक्षा करते हैं कि सूर्य्य अस्त हो तो निकल कर भोजन ढूंढा

जाय। इन की कुछ जातिवां घरेलू हैं और कुछ केवल झाड़ियों तथा दलदलों आदि में मानुषिक वस्ती से दूर रहती हैं। अनाफ़ोलज़ि समुच्चय रूप से एक घरेलू जाति हैं और इन में बहुत कम मच्छर ऐसे पाये जाते हैं, जो प्रायः दलदलों में रहते, परन्तु कभी २ मानुषिक वस्तियों की ओर आते हैं। निस्सन्देह किसी जंगली स्थान में डेरा डाला जाय तो उस समय जंगली मच्छर रुधिर की गंध से होकर वहां आ पहुंचता है।

घरेलू जाति के मच्छर प्रायः घरों तथा झोंपड़ियों के अंधेरे कोणों में रहते हैं। वे प्रत्येक जाति के मकानों में निवास स्वीकार कर लेते हैं और वहां से निकल कर रात्रि के समय मनुष्य दूसरे जीवों तथा जड़ पदार्थों पर आक्रमण करते हैं। साधारणतः वे आश्रम के स्थानों पर रहते हैं और घरों से बाहर साधारणतः हरित घास अथवा शुष्क घास पर बैठे पाये जाते हैं यद्यपि ऐसी दशाओं में भी वे मकानों तथा पड़ोसों में देखे जाते हैं। इन के अण्डे देने का स्थान सदा समीप ही होता है। कुछ अवस्थाओं में वे जोहड़ों, तालाबों, कूंओं, नदियों आदि में अण्डे देते हैं, और कुछ में जल के तनिक २ से खण्डों पर जहां वर्षा का जल, पीपों, तालाबों, मटकों, पुराने डब्बों, खोखले फूलों, शुष्क पत्तों आदि में एकत्रित हो।

साधाणतः माता अत्यंत समीपस्थ जल खंड में अण्डे देती है। यद्यपि शुष्क ऋतु में वह जल की खोज में एक २ मील उड़कर चली जाती है, परन्तु इससे अधिक आगे नहीं जाती। ज्यूंही सूर्य्य अस्त हो चुकता है, मच्छर अपने निवास से निकल कर बहुत बड़ी संख्या में इधर उधर उड़ते फिरते हैं, और एक विचित्र प्रकार की ऊंची भिनभिनाहट का सा शब्द निकालते हैं। मनुष्य के पास पहुंच कर वे कुछ सेकंड इधर उधर भिनभिनाते फिरते हैं मानो उतरने के लिये उचित स्थान ढूंढते हैं। इसके पश्चात् वह झट से नीचे उतर कर किसी स्थान पर बैठ जाते हैं, और त्वचा में छेद करके रुधिर चूसने लग जाते हैं, और जब तक भली भांति पेट न भर जावे हिलने का नाम नहीं लेते। परन्तु जब इनका पेट भर जावे तो फिर उड़कर अपने स्थान पर जा बैठते हैं और आगामिनी रात्रि के प्रतीक्षक रहते हैं।

इस स्थान में एक विशेष रूप से मनोरञ्जक वार्ता का निरूपण करना चाहता हूं। जिस प्रकार बावा आदम तथा हव्वा की कथा में अन्तिम युक्ति ने ही निषिद्ध फल खाकर आदम को आपत्ति में डाला था ऐसे ही मच्छरों में केवल मादा ने भूख की एक विशेष प्रवृत्ति रखने के कारण से अपनी जाति को कलंकित किया है। मच्छरों में केवल मादा ही मनुष्य तथा पशुओं का रुधिर चूसती है और नर केवल केले, खजूर और इसी प्रकार के दूसरे स्वादिष्ट फल खाकर सन्तोष करता है।

मच्छर साधारणतः या तो सूर्य्यास्त होने के साथ ही अथवा पौ फटने से कुछ समय पहिले आक्रमण करते हैं और जूं ही सूर्योदय होता है, पिशाचात्माओं की भांति अपने अंधेरे कोणों में जा छिपते हैं। यदि मच्छर को दिन के समय छेड़ा जावे तो वे प्रायः काट खाते हैं, और कुछ जातियां ऐसी है, जो स्वभावतः दिन के समय ही रुधिर चूसती हैं।

इन मच्छरों का जीवन काल साधाणातः बहुत संक्षिप्त होता है। इनमें बहुत से केवल कुछ सप्ताह जीवित रहते हैं और इनकी मध्यमायु दो मास होती है। इनमें से कुछ जैसे कि क्यूलेक्स हैं और जो शीत देशों में प्रायः पाये जाते हैं, शीतकाल अंधेरे स्थानों में बिताते है और बसंत ऋतु में पुनः प्रादुर्भूत होकर अण्डे देने लगते हैं। अण्डे देते समय मादा किसी पत्ते वा दूसरी तैरती हुई वस्तु पर बैठी रहती है, और ख्याल किया जाता है कि प्रायः उसी जोहड़ में अंडे देना पसंद करती है, जहां स्वयं इसका पालन हुआ था। सर्वथा इतनी बात निश्चित है, कि साधारण अवस्थाओं में वह अपने पुरातन जौहड़ को छोड़कर परे नहीं जाती।

अन्य जातियों के मच्छरों से अनाफोलीज़ को इसी भांति पहचाना जा सकता है कि विश्राम करते समय वे एक विशेष स्वरूप धारण कर लेते हैं, यथा इनका शरीर और प्रोबोसिस (टटोलने वाली शाखा) एक सीधी रेखा में होते हैं, जो ऐसे भित्ति वा तल से जहां मच्छर बैठा हो एक ऋजु कोण बनाती हैं (संक्षेपतः पूंछ उठी हुई होती है) परन्तु यह पूर्ण पहचान नहीं है। हां यह इस बात को शीघ्र ज्ञात करने का एक सामान्यतया ठीक साधन है कि क्या मच्छर अनाफोलीज़ किसी भयंकर जाति से है वा नहीं ?

चतुर्थ परिच्छेद

मच्छर तथा मैलेरिया कीटाणु।

मैलेरिया शब्द जिसके अर्थ अब साधारणतः ऋतु ज्वर के लिये जाते है, दो शब्दों से मिश्रित है, जिनके अर्थ विकृत वायु के हैं, परन्तु यह परिभाषा भ्रान्त है। थोड़ा समय व्यतीत हुआ कि प्रायः यह विचार फैला हुआ था कि ऋतु (मौसमी) ज्वर जिसे साधारणतः एग्यू वा शीत से चढ़ने वाला ज्वर भी कहते हैं, उस धूम से उत्पन्न होता है, जो रात्रि के समय ढलवां दलदले स्थानों में उठता है। परन्तु अभिनवानुसंधान से ज्ञात हुआ कि यह विचार नितान्त भ्रममूलक है और यह बात सिद्ध हो चुकी है, कि यह रोग एक विशेष जाति के कीटाणु से उत्पन्न होता है, जो रक्त में जा पहुंचते हैं। एतदतिरक्ति यह बात भी बतलाई जा चुकी है कि इस जाति के कीटाणु को रक्त में पहुंचाने का साधन मच्छरों की विशेष २ जातियें हैं, जिनके काटने से वे कीटाणु रक्त में पहुंच जाते हैं। इन घटनाओं को अब साधारणतः माना जाता है और वे बहुधा दृष्टिगोचर हो चुकी हैं। अब हम यह कह सकते हैं कि मैलेरिया एक पुनरावर्तक रोग है, जो उन कीटों से उत्पन्न होता है, जिन्हें मच्छर एक से दूसरे पुरुष के शरीर में पहुंचाते हैं। इसके अतिरिक्त इस रोग के फैलने का और कोई साधन नहीं।

मैलेरिया तीन रूप में प्रादुर्भूत होता है जिनके नाम परिभाषा में (१) बीनीइन टर्शियन (मृदु त्र्याहिक ज्वर) (२) क्वार्टन (चतुर्थक) ज्वर और (३) मैलिग्नैंट (घोर विषाक्त) ज्वर हैं। प्रथमोक्त में रोगी को प्रति तीसरे दिन ज्वर आता है, यथा यदि उसे रविवार को ज्वर है तो सोमवार को स्वस्थ रहेगा मंगल को उसे फिर ज्वर हो जावेगा। एवमेव साधारणतः इसे बारी का तिजारी ज्वर कहते हैं।

कार्टन फ़ीवर में ज्वर प्रति तीसरे दिन के स्थान चौथे दिन होता है और इसे चौथिया ज्वर कहते हैं।

मैलिग्नैंट ज्वर में रोगी अनियत समय पर रोगार्त रहता है। कभी २ तो उसे प्रायः सदैव ज्वर रहता है और कभी बीच में उतर जाता है। एतदतिरिक्त यह ज्वर भी अत्यन्त तीव्र तथा भयङ्कर होता है। क्रांति मंडल के देशों में ज्वर की यही जाति प्रायः पाई जाती है। दैनिक ७-८ दिन तक चढ़ा रहने वाला दिन में दो बार आने वाला यह सब इस में आ जाते हैं।

इन तीन प्रकार के ज्वरों में जो अन्तर है, उसका हेतु प्रायः सब अवस्थाओं में कीटाणु का अन्तर होता है, परन्तु हम यहां इन विस्तारों पर वादविवाद न करेंगे, क्योंकि वे अत्यन्त जटिल तथा पारिभाषिक हैं और डाक्टरों के अतिरिक्त इन से और किसी का मनोरंजन नहीं हो सकता।

मैलेरिया के कीटाणु एक अत्यन्त निकृष्ट जाति की एक ही कोठरी वाले शरीरों से सम्बन्ध रखते हैं, जिन्हें परिभाषा में प्रोटोज़ोआ (Protozoa) कहते हैं जिसके अर्थ पहिले जीव पदार्थ के हैं। यह बात ज्ञात होती है कि ये कीटाणु भी उन जीवों के सदृश हैं, जो सब से पहिले धरातल पर प्रादुर्भूत हुए थे। प्रोटोज़ोआ की जिस विशेष जाति से इन कीटाणुओं का सम्बन्ध है, उसे हीमामीबा (Hoemamaeba) कहते हैं। इन तीन जातियों के अतिरिक्त जो मनुष्य के अन्दर रोग उत्पन्न होते हैं, कुछ और जातियां भी हैं जो ज्वर की जाति के रोग, पक्षियों, कीटों, बंदरों आदि में उत्पन्न करती हैं।

प्रोटोज़ोआ वा जीवन की प्रारंभिक दशाओं पर विचार करना स्वतः एक मनोरंजक विषय है और इन्हीं की रचना और जीवन इतिहास पर जीवन विद्याभिज्ञ इस परिणाम पर पहुंच सके हैं, कि हमारे तारे (पृथिवी) पर जीवन का आरंभ किस रूप में हुआ था। मैलेरिया का कीटाणु जिसे परिभाषा में प्लास्मोडियम कहते हैं प्रोटोप्लाज्म से बना होता है, जो एक प्रकार का चिपचिपा सा पदार्थ है। यह प्रोटोप्लाज़म मच्छर और मनुष्यों के शरीर में रह कर विविध अवस्थाओं में गुज़रता और नाना प्रकार के रूप धारण करता है।

अब हम जहां तक संभव हो सकेगा साधारण शब्दों में यह वर्णन करने का यत्न करेंगे कि इस कीटाणु से क्योंकर ज्वर उत्पन्न होता है, और क्योंकर वह ज्वर एक व्यक्ति से दूसरे तक मच्छर द्वारा पहुंचता है। इस विषय में जो जटिल क्रिया प्रादुर्भूत होती है उस का निरूपण करने से पहले हम इस बात का निरूपण करेंगे कि एक ज्वरार्त के रक्त में इस कीटाणु की क्या अवस्था होती है। इसका अथ श्री ही हम इस स्थान से करते हैं, जहां कि ज्वर की छूत एक पुरुष को मच्छर के काटने से हो गई है। हम कल्पना किये लेते हैं, कि एक मशक माता जिसमें मैलेरिया के कीटाणु बर्तमान हैं एक स्वस्थ पुरुष को काटती है। कीटाणु प्रोबोसिस (मुंह की नाली) में से होकर गुज़रते हैं और थूक उत्पन्न करने वाली ग्रन्थियों के थूक के साथ साधारण छेद करने वाली नाली हाईपोफ़ेरिंक्स में से होकर उस पुरुष के शरीर में प्रविष्ट होते हैं, जिसे मच्छर ने काटा हो। अविदित न रहे कि ये गिल्टियां मच्छर की ग्रीवा में हुआ करती थीं।

एवं ये छोटे कीटाणु एक अत्यंत छोटे पिन के नाके के रूप में जिसे स्पोरोज़ाईट (sporozite) अथवा नीच जीवन का उत्पादक पदार्थ कहते हैं एक स्वस्थ पुरुष के शरीर में प्रविष्ट हो जाते है। जैसा कि प्रायः पाठकों को विदित है रक्त में बहुत बड़ी मात्रा खोखले खंडों की होती है जिन्हें परिभाषा में कारपसकल्ज़ कहते हैं। यह कारपसकल्ज़ एक निर्वर्ण सूक्ष्म पर्दाथ में जिसे प्लज़्मा (Plasma) अर्थात् रक्त जल कहते हैं, तैरते फिरते हैं। इनके अतिरिक्त श्वेत कारपसकल्ज़ भी होते हैं, जो रक्त अणुओं से बड़े होते हैं। परन्तु उनकी अपेक्षा इनकी संख्या बहुत न्यून होती है। वास्तव में इन दोनों का प्रमाण १ः ५०० होती है, अर्थात् ५०० रक्त अणु वा खंड हों तो एक श्वेत होता है। यहां हमें इन रक्ताणुओं पर ही विचार करना है।

नन्हा स्पोरोज़ाईट कीटाणु जब एक बार रक्त में प्रविष्ट हो जाता है, तो इन रक्ताणुओं में से एक पर आक्रमण करता है। वह इसके भीतर प्रविष्ट हो जाता है और फिर इसे खा खा कर पलने

और बढ़ने लगता है। इस क्रिया के मध्य में उसका स्वरूप भी परिवर्तित हो जाता है और यदि दृढ़ अणुवीक्षण यन्त्र के द्वारा देखा जावे तो उसका स्वरूप एक गोले के सदृश दिखाई देता है। अन्तिम बढ़ते २ वह सारे रक्ताणु में फैल कर उसे नष्ट कर देता है, और इसके पश्चात् बहुत से छोटे भागों में विभक्त हो जाता है, जिनमें से प्रत्येक को वैज्ञानिक परिभाषा में मीरोज़ाईट (Merozite) अर्थात् कीटाणु के बच्चे कहते हैं। ये तुरन्त किसी रक्ताणु पर आक्रमण करते हैं। यह क्रिया इतनी फुरती से होती है कि बहुत थोड़े समय में इस प्रकार के सहस्रों रक्ताणुओं पर आक्रमण होता है और वे नष्ट हो जाते हैं। सारांश यह है कि शरीर के भीतर इन रक्ताणु के नष्ट होने का परिणाम यह होता है, कि शरीर में एक प्रकार का विषाक्त पदार्थ उत्पन्न हो जाता है, जिस से ज्वर चढ़ आता है।

विज्ञानविद् इस सारी क्रिया को परिभाषा में साईकल (Cycle) कहते हैं और इस साईकल अर्थात भ्रमण का नाम जो रक्त की कोठरियों में होकर गुज़रता है, इन्डोजीनस साईकल (Endogenous Cycle) वा शीज़ोगोनी (Shizogony) विख्यात है। इस क्रिया के लिये कीटाणु की जाति की दृष्टि से न्यूनाधिक कुछ घंटों की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि वे तीन प्रकार के ज्वर जिन का ऊपर निरूपण किया गया है होते हैं। मध्यम श्रेणी के पुरुषों के शरीर के विषय में अनुमान किया गया है कि इस में (२५००००००००००००) २ नील ५० खरब रुधिर के रक्ताणु वर्तमान होते है, और अनुमानतः प्रति लक्ष अणुओं में एक पर मैलेरिया का कीड़ा आक्रमण करता है जिस से अनुमान होता है कि ज्वर के एक आक्रमण में २५ करोड़ इस जाति के कीटाणु शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं, और यह सब कुछ एक मच्छर के काटने का परिणाम होता है।

अब कल्पना करो, कि एक ऐसा पुरुष ज्वर की अवस्था में रुग्न पड़ा है। एक नवोत्पन्न मच्छर गुज़रते हुए उसे देख कर इस के शरीर पर बैठ जाता है और उसका रक्त चूसना आरम्भ करता है। उस समय जो क्रिया प्रादुर्भूत होती है वह यह है कि कतिपय

कीटाणु रक्त के साथ ही चूसे जाकर मच्छर के पेट में प्रविष्ट हो जाते हैं। रुधिर तो इस के भीतर जाकर पच जाता है, परन्तु जीवित कीटाणु बच कर इसके शरीर पर निकल आते हैं। यहां इन कीटाणुओं को एक और क्रिया वा साईकल से गुज़रना पड़ता है, जिसे एक्सोज़ीनस साईकल (Excogenous) वा स्पेरोगोनी (Sperogony) कहते हैं। यहां इन समस्त जटिल अवस्थाओं का निरूपण अनावश्यक प्रतीत होता है, जिन में से होकर वह कीड़ा गुज़रता है। नूतन अणुवीक्षण यंत्रों की सहायता से इन दशाओं का सम्यक् निरीक्षण किया जा चुका है और शास्त्रपारंगत जन इन में से प्रत्येक अवस्था को भली भांति समझते हैं। केवल इतना वर्णन कर देना पर्याप्त है कि मनुष्य के शोणित की भांति यहां भी कीड़ा बहुत से सूक्ष्म २ शरीरों में विभक्त हो जाता है, और यह शरीर मच्छर की श्लेष्मोत्पादक ग्रन्थियों में प्रविष्ट हो जाते हैं। यहां वे इस अवस्था में तैयार रहते हैं, कि जहां इस विशेष मच्छर ने किसी व्यक्ति को काटा और यह झट स्निग्ध पदार्थ के साथ उस पुरुष की देह में प्रविष्ट हुए। सारांश यह कि इसी प्रकार मैलेरिया के कीटाणु एक व्यक्ति से दूसरे और दूसरे से तीसरे तक पहुंचते रहते हैं। यह वर्णन करना कठिन है कि क्या कीटाणु की शरीर के भीतर उपस्थिति से मच्छर को भी कुछ कष्ट होता है वा नहीं, यद्यपि ऐसा होना नितान्त असम्भव है।

इस में कुछ भी सन्देह नहीं कि यहां इस कीड़े के इतिहास का नितान्त संक्षिप्त आकार मात्र दिया गया है और जो व्यक्ति इस के सम्बन्ध में पूर्ण परिचय प्राप्त करना चाहें उन्हें उचित है कि वे इस विषय की विस्तृत पुस्तकें अवलोकन करें।

चिकित्सानुसंधान की मनोहर गवेषणाओं में से कदाचित सर्वतोश्रेष्ठ मनोहर गवेषण मच्छर से मैलेरिया ज्वर उत्पन्न होने के विषय के सम्बन्ध में है, जिस का निरूपण ऊपर किया गया है। इस में कुछ भी संशय नहीं कि मैलेरिया ज्वर अत्यन्त पुरातन काल से वर्तमान चला आता है। यतः इसका निरूपण हकीम हीपोक्रेटीज़ के अतिरिक्त जो मसीह से ४०० वर्ष पूर्व हो गुज़रा

है, जालीनूस और फ़ैलसूफ़ तथा कतिपय अन्य पुरातन रूमी चिकित्सकों ने किया है। ख्याल किया जाता है कि प्राचीन मिश्र देश के पत्रों पर लिखित हस्त लिपियों में से कतिपय में मैलेरिया ज्वर का निरुपण अंकित है।

सं० १६४० ई० डेल सिनकोन (Del Cichon) महाशय ने जो पीरू के वाइसराय (राज प्रतिनिधि) थे उस छाल की गवेषणा की जिसका नाम इनके नाम पर सिनकोना प्रसिद्ध हुआ और मैलेरिया ज्वरों में इसका प्रभाव मालूम किया। इसी छाल से कुनीन बनाई जाती है। इसका नाम जीज़वाट बार्क भी प्रसिद्ध हुआ था, क्योंकि प्राचीन ज़ीजवाट पादड़ी लोग इसे ज्वर रोकने के लिये सेवन करते थे।

जैसा कि पहिले इस परिच्छेद के आरम्भ में वर्णन किया जा चुका है, आरम्भ में यही विचार फैला हुआ था कि यह रोग उस बुरी वायु से उत्पन्न होता है, जो दलदली भूमियों से उत्पन्न होती है, परन्तु अन्त में १८८६ ई० में एलजियर्ज़ में अनुभव करते हुए डाक्टर लैवेरन (Lavaren) ने यह बात सिद्ध की कि ज्वर उत्पन्न करने वाली चीज़ वस्तुतः स्वास्थ्य को हानिकारक वायु नहीं, प्रत्युत यह एक प्रकार का कीटाणु है, जो मैलेरिया के रोगियों के रक्त में पाया जाता है।

इसके पश्चात् डाक्टर किंग ने यह बात जतलाई कि इसको एक से दूसरे व्यक्ति तक एक काटने वाले कीड़े के द्वारा व्यक्ति के द्वारा ही पहुंचाया और ले जाया जा सकता है, और सम्भवतः वह काटने वाला कीड़ा मच्छर हो सकता है। इसके पश्चात् सर पैटरिक मैनसत (Sir Patrick Manson) ने बहुत कुछ अनुसन्धान किया। इससे पूर्व उन्होंने यह गवेष्णा की थी कि मैलेरियल कीटाणु को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने वाले वस्तुतः मच्छर ही होते हैं। इसके पश्चात् अन्य अनुसंधान कर्ताओं ने गवेष्ण श्रृंखला आरम्भ रक्खी, यहां तक कि १८९९ ई० में मेजर (अबसर) रोनाल्ड रास ने इस महान् बात का पता लगाया कि ज्वर का कीड़ा मच्छर तथा मनुष्य के शरीर में अमुक २ परिवर्तनों में से

गुज़रता है । उस समय से लेकर अब तक क्रातिमंडल में जितना चिकित्सानुसंधान हुआ है, वह सब का सब इसी नियम के आधार पर हुआ है, और कई अन्य रोगों के कीटाणु के सम्बन्ध में यह बात प्रमाण कोटि को पहुंचा दी जा चुकी है, कि वे विविध कीड़ों तथा पशुओं के शरीर में ऐसे ही साईकिल में से होकर गुज़रते हैं ।

अब संसार इस प्रकार के प्रयोगिक अनुभवों का इच्छक था, जिस से पूर्ण तथा निश्चित रूप से सिद्ध होजाय कि मच्छरों के द्वारा ज्वर उत्पन्न होने का विषय निर्भ्रान्त है । अन्तिम सर पैटरिक मैनसन ने इस प्रकार के कुछ अनुभव करने की ठानी और १९०० ई० में कोलोनियल आफ़िस के अनुरोध पर इन्हें करके दिखाया । इस विषय में इन्हें इटली के कुछ प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ताओं ने भी बहुत कुछ सहायता दी क्योंकि वे दक्षिणीय इटली तथा सिसली के ज्वर ग्रस्त प्रान्तों को इस हानिकारक रोग से मुक्ति दिलाना चाहते थे ॥

सारांश यह है कि डाक्टर सेम्बन Sambon और डाक्टर लो Low ने साईनोरटरज़ी Signor Terze के साथ कुछ सेवकों को संग लेकर इटली देश के एक असीम दूषित वायु युक्त प्रान्त में जहां एक भी किसान ज्वर से बचा हुआ नहीं था गये और एक इस प्रकार की झोंपड़ी बनाई जिसके भीतर मच्छर प्रविष्ट नहीं हो सकते थे । इस की रचना इस प्रकार की थी कि झोंपड़ी की खिड़कियों तथा द्वारों पर सूक्ष्म तार की जाली लगा दी, जिस के भीतर किसी मच्छर का प्रविष्ट होना पूर्णतया असंभव था ॥

इस अवस्था में वह तीन मास तक रहे । केवल दिन के समय झोंपड़ी छोड़ कर कहीं जाते थे। जल भी साधारण जैसा दूसरे किसान पिया करते थे पीते थे । घर से बाहर किसी सीमा तक हाथ का श्रम भी करते थे, और ज्वर से बचने के लिये उन्होंने इसके अतिरिक्त और किसी प्रकार की सावधानता नहीं की थी कि सूर्यास्त तथा सूर्योदय के मध्य में किसी समय स्थान

से बाहर नहीं निकलते थे। इस का परिणाम यह हुवा कि वे मच्छरों के काटने से बचे रहे और इन में से किसी को ज्वर की तनिक भी शिकायत नहीं हुई जबकि आस पास जो किसान रहते थे उन्हें मच्छर काटते रहते थे इस लिये वे सब के सब इस रोग का आखेट हुए, । इस अनुभव से स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि मच्छर ही वस्तुतः मैलेरिया ज्वर प्रचारक हैं ॥

इसके अनन्तर एक और निर्णयक अनुभव किया गया, जिसका विवरण यह है कि कुछ जीवित मच्छरों को जिन्हें रोम में मैलेरिया के रोगियों का रुधिर चुसवाया गया था एक विशेष रूप से बनाये पिंजरे में इङ्गलिस्तान भेजा गया, और यहां इन्हें लंदन के ट्रापिकल स्कूल आफ़ मेडीसन की लैबोरेटरियों में पहुंचाया गया। प्रोफ़ेसर मैनसन के सुपुत्र डाक्टर थरबर्न मैनसन तथा मिस्टर वार्न लैबोरेटरी एसिस्टैंट ने इच्छा पूर्वक अपने शरीर पर इन छूतदार मच्छरों से डंक लगवाये। इनमें से कोई भी न तो इङ्गलिस्तान से बाहर गया था और न उसे किसी और रीति पर मैलेरिया ज्वर की छूत लगी थी तथापि मच्छरों से डंक लगवाने के कुछ काल पश्चात् दोनों को साधारण रीति से मैलेरिया ज्वर हो गया, और जब अणुवीक्षण यंत्र द्वारा इनके रक्त की परीक्षा की गई, तो ज्ञात हुआ कि इसमें मैलेरिया के कीटाणु वर्तमान हैं।

इन दो ऐतिहासिक अनुभवों के पश्चात् लोगों को बहुत कुछ विश्वास इस विषय पर हो गया कि मच्छरों ही से मैलेरिया ज्वर फैलता है।

आंगलस्थान में दक्षिणीय किंग्सटाऊन के विचित्रालय में नेचुरल हिस्टरी के बड़े द्वार के हाल में एक सुन्दर माडेल इन विचित्र अवस्थाओं का बना कर रक्खा हुआ है, जिनमें से मच्छर को गुज़रना होता है। यह माडेल यतः बड़ी आकृति पर बना हुआ है अतः इसमें प्रोबोसिस के भिन्न २ काटने वाले भाग प्रंशसनीय रीति पर दिखाये हुए हैं, और प्रत्येक व्यक्ति इनका मन लगाकर साक्षात्कार कर सकता है। इस केस में भिन्न २ विचित्र २ आदर्श शृंखला के द्वारा मैलेरिया के कीड़े की सब अवस्थायें तथा स्वरूप

जिन्हें परिभाषा में एक्ज़ोजीनस तथा इंडोजीनस साइकिल कहते हैं, भली भांति दिखाई गई है। इस विचित्रालय के भीतर इन पदार्थों के होने का कारण इसके विद्वान डायरेक्टर सर ई० रे० लेंकास्टर (E. Ray Lancaster) का पुरुषार्थ है, और यह नमूने संसार भर के अन्दर सब से पूर्ण तथा सुन्दर हैं। जो लोग शारीरिक शास्त्र से अनुराग रखते हों, उन्हें निश्चय रूप से इनको एक दृष्टि देख लेना चाहिये। इसके पास ही एक और केस में टसी टसी मक्खी और निद्रा रोग के कीटाणु के नमूने रक्खे हुए हैं, जिनका वर्णन संक्षेप से किसी अन्य स्थान में किया गया है।

पंचम परिच्छेद

मच्छर तथा श्लीपद रोग

एलीफैंटाइसिस वा श्लीपद (फ़ीलपा) उस विचित्र रोग का नाम है, जिसमें शारीरिक अंग बहुत बड़े २ और भारी होजाते हैं और न्यूनाधिक हाथी के मोटे और बेडौल अंगों के सदृश दिखाई देते हैं। यह रोग शताब्दियों से चला आता है और प्राचीन काल में अरबों ने इसका नाम दाउल फ़ील रक्खा था। वैद्यक में इसको श्लीपद कहते हैं। पूर्वीय जगत में यह रोग साधारणतः देखा जाता है, और पश्चिमीय भारत द्वीपावलि तथा दक्षिणीय अमरीका के कुछ भागों में भी पाया जाता है। पूर्वीय भारत द्वीपावलि में प्रत्येक दूसरा पुरुष इस रोग से ग्रस्त पाया जाता है। पूर्वीय भारत में भी यह बहुत है।

इस रोग का प्रभाव विशेष रूप से टांगों पर पड़ता है। सब से पहिले पांव सूज कर कुप्पे से हो जाते हैं, और कभी २ आकृति में भी बढ़ जाते हैं। इस के पश्चात् सूजन ऊपर की ओर बढ़ने लगती है। इसका प्रभाव टांगों पर पड़ता है। यहां तक कि अन्त में अंग इतने भारी हो जाते हैं कि इन की गोलाई कई फुट की होजाती है। टांगों के अतिरिक्त संभव है इसका प्रभाव एक वा दोनों भुजाओं पर भी पड़े, जिसके पश्चात् रोगी का रूप डरावना तथा भद्दा निकल आता है। उसकी त्वचा खुरदरी तथा भद्दी दिखाई देती है। नख मोटे तथा भद्दे होजाते हैं। वह बेचारा इधर उधर चेष्टा भी नहीं कर सकता और प्रायः उसे छकड़े पर बिठाकर एक शोचनीय निकम्मी दशा में एक से दूसरे

स्थान तक लेजाना पड़ता है। (मूल पुस्तक में यद्यपि कोई चित्र नहीं है, तथापि समझाने के लिये हम दो चित्र देते हैं) विदित रहे कि इस समस्त वेदना का कारण एक सूक्ष्म बाल के बराबर मोटा कलबलाता हुआ ४ इंच लम्बा कीड़ा होता है, जिसे मच्छर एक व्यक्ति से दूसरे तक इसी भांति ले जाते हैं, जैसे मैलेरिया वा पीत ज्वर के कीड़ों को। सब से पहिले सं० १८६२ ई० में डेमारके साहिब (Demarquay) ने इस कीड़े को रोगियों के भीतर से निकले सूक्ष्म पदार्थ में देखा था और इस गवेषणा के पश्चात् बहुत से डाक्टरों से इसका प्रमाणीकरण हो चुका है। सं० १८७६ ई० में बेनक्राफ़ साहिब ने ब्रसबेन में कीड़े का वह स्वरूप ज्ञात किया, ज़िससे आगे इस के बच्चे उत्पन्न होते हैं, और अन्तिम इसी के नाम पर इस कीड़े का नाम फिलेरिया बेन क्राफ्टी (Filaria bancrafti) प्रसिद्ध हुआ।
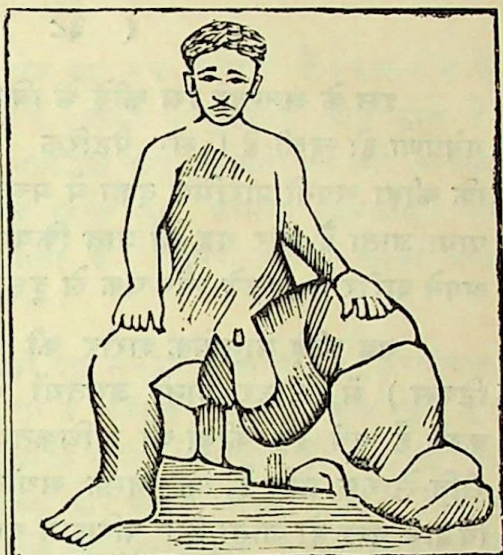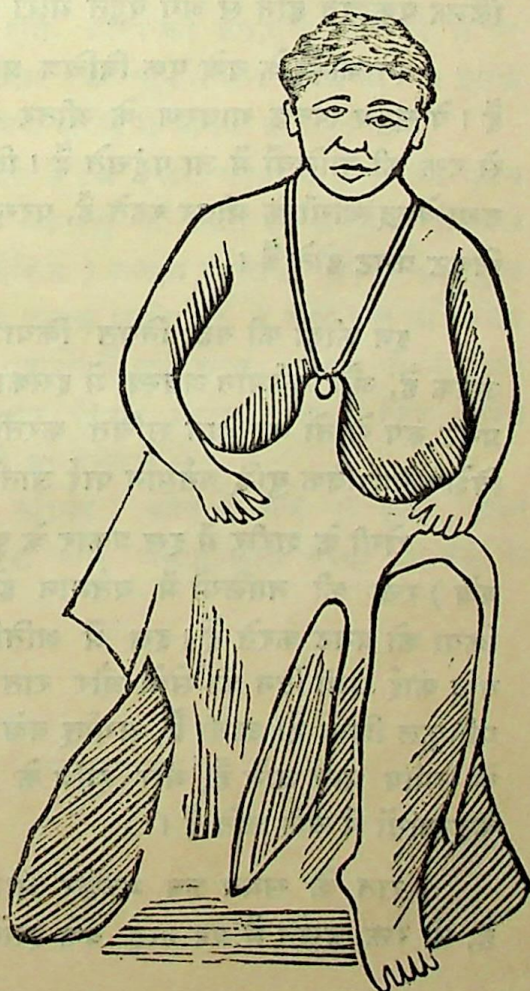
इस के अनन्तर इस कीड़े के विषय में बहुत कुछ परिवर्धित गवेषणा हो चुकी है। सर पैटरिक मैन्सन ने यह बात सिद्ध की कि कीड़ा अपनी प्रारंभिक दशा में मच्छरों के शरीर में वर्तमान पाया जाता है और यह भी ज्ञात किया कि यही जीव इस कीड़े को अपने शरीर में पालते और एक से दूसरे व्यक्ति तक लेजाते हैं।

यह कीड़े मानुषिक शरीर की श्लेष्मिक ग्रन्थियों (लिम्फ़ेटिक्स) में रह कर दोनों जातियों के मिलाप से बच्चे उत्पन्न करते हैं एवं इन कीड़ों की अधिकता से लिम्फ़ेटिक एक ऐसी रीति से रुक जाते हैं, कि लिम्फ़ अर्थात् श्लेष्मा का भ्रमण तथा विभाग बन्द हो जाता है। परिणाम यह होता है कि इनके भीतर लिम्फ़ एकत्रित होने से अंग बहुत भारी हो जाते हैं।

इन कीड़ों के बच्चे एक विचित्र प्रकार की नन्ही सृष्टि होते हैं। वे सूक्ष्म स्वच्छ आवरण के भीतर बन्द होते हैं, और लिम्फ से रक्त की नालियों में जा पहुंचते हैं। दिन के समय तो वे फेफड़े तथा केन्द्रस्थांगों के भीतर रहते हैं, परन्तु रात्रि के समय शरीर के निकट प्रगट होते हैं।

इन कीड़ों की यह नियत क्रिया (Periodicity) विस्मय जनक है, और वर्तमान अवस्था में इसका कारण अविदित है, क्योंकि प्रगट रूप से तो यह बात सूचित करती है कि इनके भीतर एक विशेष पाशविक बुद्धि वर्तमान पाई जाती है।

रोगी के शरीर में इस प्रकार के कुछ लक्ष जनेन (वा छोटे बच्चे) रक्त की नालियों में वर्तमान होते हैं, और उसी समय क्रिया को प्रगट करते हैं। इस में अतिविचित्र बात यह है, कि यदि कोई रोगी दिन को सोये और रात को जागता रहे तो समय प्रतिकूल क्रिया हो जाती है, अर्थात् बच्चे दिन के समय शरीर तल के समीप पाये जाते हैं, और रात्रि के समय फेफड़ों तथा अन्य केंद्रस्थांगों में चले जाते हैं।

रात के समय जब मच्छर भोजन की खोज में निकलता है, तो रक्त चूसने में यह नन्हे बच्चे इसके आमाशय में प्रविष्ट हो

आते हैं, और यहां उनके जीवन का रूप बदलता है। इस कीड़े के बच्चे का मुख विचित्र होता है। इसके ६ हुकदार ओष्ठ होते हैं, जिनके केंद्र में से एक तीव्र नोकीला दांत सा आगे की ओर निकला रहता है। ज्ञात होता है कि इससे इस कोमल आच्छादन को फाड़ने का काम लिया जाता है, जिसके भीतर कीड़ा बन्द होता है।

जूं ही इन कीड़ों वाला रक्त मच्छर के आमाशय में पहुंचता है वह जमना आरंभ हो जाता है जिससे आच्छादन कसे रहते हैं। आच्छादन के भीतर कीड़े भली भांति सावधान हो जाते हैं और अन्त में आच्छादन को फाड़ कर बाहर निकल आते हैं जिसके पश्चात् वे आमाशय की भित्ति से निकल कर मच्छर के स्नायु में पलते हैं। अन्त में शनैः शनैः ग्रीवा की कफयुक्त ग्रन्थियों में जा पहुंचते हैं और जब मच्छर रक्त चूसने लग जाता है, तो इसके प्रोबोसिस के द्वारा मानुषिक शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं।

इस भांति हम देखते हैं कि दूसरे कीड़ों के द्वारा परिवर्तन तथा संसरणा करने वाले कीटाणु की भांति इन कीड़ों में विकास का एक पूर्ण चक्र (साईकिल) चलता रहता है। बड़े कीड़े मनुष्य के शरीर में रह कर बच्चे उत्पन्न करते हैं। ये नन्हे बच्चे या जनेन मानुषिक शरीर में जा पहुंचते हैं वहीं इनका पालन पोषण होता है और अन्त में बड़े होकर किसी मच्छर द्वारा ही फिर किसी स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में जा पहुंचते हैं।

ऐलीफैंटाइसिस (श्लीपद) कीड़े के एक से दूसरे स्थान तक पहुंचाने में क्यूलेक्स और अनाफ़ोलीज़ दोनों जातियों के मच्छर काम करते हैं।

षष्ठ परिच्छेद

महा अभिषेणन

प्राचीन कहावत प्रसिद्ध है कि रोग से सुरक्षित रहने का प्रयत्न चिकित्सा से श्रेयस्कर है। यही बात इन रोगों पर भी चरितार्थ होती है, जो मच्छरों के द्वारा उत्पन्न होते हैं। इस अवस्था में रोग के प्रचार को रोकने का साधन यही हो सकता है, कि रक्त चूसने वाले मच्छरों को नष्ट या कम कर दिया जावे। यह बात वर्णनीय है कि इस बड़ी गुत्थी को सुलझाने के अभिप्राय से संसार के बहुत से भागों में गत सम्वतों के भीतर अनगणित अनुभव किये गये हैं।

जब से सं० १८९७ ई० और सं० १८९८ ई० में यह बात पूर्णतया सिद्ध हुई है कि मच्छर ही एक मनुष्य से दूसरे तक मैलेरिया के कीटाणु को पहुंचाता है, विविध देशों में इसी प्रयोजन से टोलियां भेजी गई हैं, और इंगलिस्तान तथा अन्य यूरोपीय देशों के तत्ववेत्ताओं ने बहुत से अनुभव इसी प्रकार के किये हैं जिन से यह ज्ञात हो सके कि संसार को मच्छरों की व्यथा से छुड़ाने का पूर्ण उपाय क्या हो सकता है? और यह बात मान पूर्वक कही जा सकती है, कि अनथक प्रयत्नों से बहुत बड़ी सीमा तक कृतकार्यता प्राप्त हुई है। बड़े २ विख्यात व्यौपारियों तथा लोगों ने जो इस कार्य से अनुराग रखते थे उदारता से बहुत २ सा धन इसकी सहायता में दिया है और विज्ञान तथा चिकित्सा विभाग से सम्बन्ध रखने वाले लोगों ने बड़ी उदारता से अपनी सेवायें इस कार्य के लिये प्रदान करते हुए संसार के सब से बड़े भयंकर भागों में जाने तक से मुंह नहीं मोड़ा और निर्जन दलदलों जंगलों तथा घातक जल वायु के देशों में इस प्रयोजन से गये हैं कि इस पहेलिका का कोई ऐसा उत्तर सोचें, जिस से अन्त में मनुष्य बहुत सी आपत्तियों से छुटकारा पा सके। इस प्रयत्न में विज्ञान की बलिदान भूमि पर बहुत सी जानें भेंट हुईं। बड़े २ जगद्विख्यात तत्ववेत्ता इन रोगों

का लक्ष्य बन चुके हैं, जिन के रहस्य के प्रकाश में वह सहायता दे रहे थे। यह लोग एक प्रकार के मौन वीर थे, जिन का नाम विज्ञान के शहीदों की सूची में सदा स्थूलाक्षरों में अंकित रहेगा। इस संक्षिप्त पुस्तक में उन असंख्य विविध प्रकार के उपायों का वर्णन संक्षेप मात्र किया जा सकता है, जो मच्छरों के नाश के हेतु से प्रयोग में लाये गये। फिर भी आशा है, कि उस से उन लोगों के भीतर अवश्य कुछ प्रेरणा उत्पन्न होगी, जिन्होंने प्रायोगिक कीट-विद्या की ओर ध्यान दिया है कि वे मच्छरों तथा रोगाणुओं के विनाश के विषय पर पूर्ण विचार करें।

पाठकों के लिये यह समझना कुछ भी कठिन नहीं होगा कि मच्छर पर इस की वृद्धि के भिन्न समयों में से किसी एक के बीच पर आक्रमण किया जा सकता है, अर्थात् चाहे वह प्रौढ़ मच्छर हो, चाहे निम्फ़ की अवस्था में लारवा वा अण्डा हो। सब से पहिले हम प्रौढ़ मच्छर अथवा इमागो की ओर ध्यान देते हैं। मनुष्य को कीड़ों से कटने से बचाने के बहुत से उपाय सोचे गये हैं, परन्तु इस के साधन केवल दो ही हैं।

(१) यह कि त्वचा पर कोई ऐसा पदार्थ मल दिया जावे, जिससे मच्छर न काटे।

(२) यह कि मच्छर को मनुष्य से परे रक्खा जाय।

शरीर को सुरक्षित रखने के लिये बहुत सी औषधियों से अनुभव किया गया है परन्तु दुर्भाग्य से जो पदार्थ इस कार्य के लिये बहुत उपयोगी हैं वे मनुष्य को बहुत हानि पहुंचाते हैं और यही कारण है कि वे अपयोज्य हैं। दूसरी ओर इस प्रकार के पदार्थ यथा यूक्लिप्टस, कर्पूर, साईयानाईड साल्ट, तैल तथा तीक्ष्ण गंध युक्त पदार्थ केवल बहुत ही थोड़े काल उपयोगी सिद्ध होते हैं, और इन पर किसी अवस्था में पूर्ण विश्वास नहीं हो सकता। सारांश इस प्रकार का लोशन वा मिश्रण जो पूर्ण रीति पर लाभदायक और प्रभावयुक्त हो अभी तक ज्ञात नहीं हुआ। इस अवस्था में हम इस रक्षा विधि को कार्य रूप में निरर्थक पाते हैं, क्योंकि रासायनिक पदार्थ अधिक से अधिक यही कर सकते हैं, कि डंक की खराश को कुछ घटा दें। अब हमें इस उपाय पर विचार

करना है, जिससे कीड़े को मनुष्य से परे रक्खा जा सके। यह उपाय कम से कम ऐसा है, जिस में अभी पूर्ण रीति पर अकृत-कार्य्य नहीं रहे। एक रक्षा का उपाय जाली का प्रयोग करना होता है। रात को सोते समय मसहरी के ऊपर इर्द गिर्द अत्यन्त सूक्ष्म जाली तान दी जाती है। कुछ मकान इस प्रकार के बनने लगे हैं, जिन में मच्छर प्रविष्ट नहीं हो सकते इसका उपाय यह है कि द्वारों। खिड़कियों तथा वातायनों (रोशनदानों) के आगे सूक्ष्म लोहे की वा सूत्र की जाली लगा दी जाती है। इस प्रकार के मकान तथा कमरे सर्वथा प्रयोज्य पाये गये हैं। इन के द्वारा छूत की आशंका नितान्त घट जाती है, और उष्ण कटिबंध के कुछ भागों में अब इसी प्रकार के मकान अधिक प्रयुक्त होते हैं। परन्तु इस में एक त्रुटि भी है वह यह कि जाली में बहुधा छेद हो जाता है, और मच्छर जो तनिकसा छिद्र भी ढूंड निकालने में दक्ष होते हैं झट भीतर घुसने लगते हैं। दूसरी बात यह भी है कि प्रत्येक व्यक्ति मच्छरों से बचाव वाले स्थान नहीं बनवा सकता, और कुछ स्थानों की जलवायु इस प्रकार की होती है कि इनमें वे सर्वथा अप्रयोज्य होते हैं॥

उष्ण कटिबंध के कुछ भागों में वृक्षों को इस रीति से उगाने का अनुभव भी किया गया है, जिस से वह भूमि जहां मच्छर पलते हैं मानुषिक बस्ती से दूर रहें, यथा एक बस्ती किसी दल-दल के निकट बस्ती हो, तो उस के चारों ओर यूक्लिप्टस के वृक्ष इस रीति से लगा दिये जाते हैं, कि वे एक प्रकार की बाड़ का काम देते हैं। सुना गया है कि इस से प्रविष्ट होने वाले मच्छरों की संख्या बहुत घट जाती है क्योंकि मच्छर पत्तों के भीतर से सुगमता से नहीं गुज़र सकते, और दूसरे यूक्लिप्टस (सुफैदे) की गंध इन्हें असह्य प्रतीत होती है।

एक तजवीज़ यह भी की गई है, कि कोई इस प्रकार का कीड़ा जैसे कि ड्रैगन फ़्लाई होती है, अथवा कोई पक्षी जो मच्छर खाता हो पाला जावे और उसकी सन्तति इन देशों में बाहुल्य से फैलाई जावे, जहां मच्छरों की अधिकता है। दुर्भाग्य से अभी तक

कोई ऐसा जीव ज्ञात नहीं हुआ, जो मच्छरों की सन्तति को रोकने के अतिरिक्त समय असमय स्वयं हानि कारक सिद्ध न हो अथवा फ़सलों को हानि न पहुंचावे। इस विषय में हमें आस्ट्रेलिया का उदाहरण स्मरण रखना चाहिये, कि जहां कुछ वर्ष पूर्व एक पुरुष ने हितैषिता तथा लाभ पहुंचाने के लिये शशों (खरगोशों) की सन्तति प्रविष्ट की थी, परन्तु अब यह इतने बढ़ चुके हैं, कि प्रति वर्ष सहस्रों पौंड इन हानियों से बचने के लिये व्यय किये जाते हैं, जो इन के कारण से उठाने पड़ते हैं।

इससे पूर्व किसी अध्याय में वर्णन किया जा चुका है कि लारवे तथा निम्फ़ इस जल के तल के समीप जिसके भीतर वे रहते हैं तैरा करते हैं और एक प्रकार की नालियों के द्वारा सांस लेते हैं, जो जल तल से ऊपर निकली हुई होती हैं। इस आधार पर आजकल उष्ण कटिबंध के देशों में लारवे तथा निम्फ़ का नाश करने के लिये निम्नलिखित उपाय प्रयोग में लाया जाता है। जौहड़ो वा दूसरे जल खंडों की तल पर जहां इस प्रकार के कीड़े पाले जाते हैं तैल (साधारणतः मट्टी का) छिड़क दिया जाता है। इस तैल की एक सूक्ष्म तह जल की सारे तल पर फैल जाती है, जिससे इन नन्हें कीड़ों के सांस लेने की नालियां बंद हो जाती हैं, और वे सांस घुट कर मर जाते हैं। इस विधि से लाखों मच्छरों को नष्ट किया जा सकता है। जब कभी मच्छरों को नष्ट करने की तैयारी की जाती हैं, तो बहुत बड़े क्षेत्र फल में प्रत्येक जौहड़ वा तालाब के तल पर जहां इस प्रकार के मच्छर पलते हों तैल डाल दिया जाता है। इस प्रयोजन के लिये आटोमेटिक विधि से तैल फैलाने वाले यंत्र प्रयुक्त किये जाते हैं, जिन्हें एक से दूसरे स्थान में ले जाया जा सकता है।

इस विधि के फल बहुत कुछ सन्तोषप्रद सिद्ध हुए हैं। बहुत से प्रान्तों में इस से मृत्यु निष्कर्ष बहुत कुछ घट गया है, और बहुत से ग्राम तथा नगर पहिले की अपेक्षा अधिक रक्षित हो गये हैं। जो जल पीने वा घर में प्रयोग करने के लिये रक्खा हुआ हो उसे पात्रों में भर कर ऊपर जाली फैला दी जाती है, क्योंकि प्रगट है कि

इस में यदि तैल दिया गया हो तो जल विकृत हो जायगा, और यह रक्षा भी न की जावे तो मच्छर मादा इस जल में अंडे दे देगी। एक और उपाय भी वर्तमान काल में कृतकार्य्यता के साथ प्रयोग में लाया जाता है। वह यह है कि जहां मच्छर पाले जाते हों वहां इस प्रकार के जलचर जीव तथा मछलियां पाली जाती हैं जो मच्छरों की प्राकृतिक शत्रु होते हैं।

पश्चिमीय भारत द्वीपावली के राजकीय कृषि विभाग की ओर से १९०५ ई० में एक बहुत मनोरंजक पुस्तक "मलैन तथा मच्छर" के शीर्षक से प्रकाशित की गई थी। इस पुस्तका के लेखक मिस्टर बैलो साहिब स्टाफ़ के इंडिमालोजिस्ट (कीटाभिज्ञ) थे। मिस्टर केनरक गनरो ने यह बात प्रगट की थी, कि बारबेडोज़ द्वीपमाला की नदियों में एक प्रकार की छोटी मछली ऐसी पाई जाती है जो टापमिनु (Topminnou) जाति से मिलती जुलती है, और इसका पारिभाषिक नाम जिरार्डनिस पोईसीलाईडिस (Girardinous poeciloidis) है और साधारणतः वह मलैन के नाम से विख्यात है। उक्त लेखक ने विचार प्रगट किया कि यह मछली मच्छर की जान की शत्रु है, और इस मछली की उपस्थिति ही के कारण से इस द्वीप में मैलेरिया नहीं फैलता। इस विचित्र साक्षात्कार के परिणाम पर कार्य्य करके गवर्नमेंट ने मलैन मछली के कई जहाज़ पश्चिमीय भारत द्वीपावली में इस प्रयोजन से भेजे कि इन्हें वहां जल में छोड़ दिया जावे, जिसका अन्तिम परिणाम यह हुआ कि बहुत से स्थानों से मच्छरों का ह्रास कर्णगोचर हुआ।

मलैन एक बहुत ही छोटी मछली होती है, जिसकी लम्बाई १॥ इंच के लग भग होती है। मिस्टर वेलो लिखते हैं कि "इन में मादा की पहचान यह है कि इसका रंग मध्यम तथा बिना किसी चिन्ह के होता है जब कि नर के पार्श्वों पर अनियमित लाल छींटे से पड़े होते हैं, और प्रत्येक पार्श्व पर गोल काला धब्बा होता है।" यह मछलियां बहुभक्षी होती हैं, और मच्छरों के अण्डों, लारवा, निम्फ़ों आदि को चट कर जाती हैं। वह तालाबों, जल भण्डारों, फ़व्वारों, तथा उद्यानों के भीतर बने हुए जौहड़ों में जिसमें पौदे

वर्तमान हों, रह सकती है, और इस दृष्टि से सर्वत्र लाभ के साथ काम आती हैं।

इन छोटी मछलियों के सम्बन्ध में कतिपय परीक्षण किये गये हैं, और आशा की जाती है कि इन के पालन के साथ यदि स्वास्थ्य रक्षा के अन्य उपायों को भी उपयोग में लाया जावे तो किसी समय में इन प्रान्तों से जहां मच्छर अधिकता से होता है, वह नितान्त सदा के लिये दूर हो जावेगा।

संयुक्त प्रान्त अमरीका के फ़िश कमीशन (Fish commission) ने वर्तमान काल में बहुत बड़ी संख्या टापमिनु मछलियों की टेक्सास से हेमयाई द्वीप समूह में भेजी थी, और समाचार यह आया है, कि इन्होंने मच्छरों को घटाने में बहुत कुछ आदरनीय सहायता दी है।

यह बात भी देखी गई है कि जिन जौहड़ों तथा तालाबों में जलशस्य अधिकता से उगा हुआ हो, उन में साधारणतः मच्छरों के लारवा वर्तमान नहीं होते, जिससे यथासम्भव जलशस्य उगाने की ओर लोगों को प्रेरित करना लाभदायक पाया गया है।

मच्छरों के विरुद्ध जो युद्ध छेड़ी गई है इस में जल के निकास की विधि भी बहुत सुगम पाई गई है। यतः शेष समस्त उपायों को मिलाकर जो लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं वे इस एक उपाय से प्राप्त हो सकते हैं।

हम जानते हैं कि जल की अनुपस्थिति में मच्छरों की सन्तति बढ़ नहीं सकती और हमें यह भी ज्ञात है कि इस कीड़े की वंश-वृद्धि बहुधा स्थिर जल में होती है। अतः यदि दूषित वायु युक्त प्रान्तों के भीतर से इस प्रकार का जल दूर किया जा सके, तो उन में मच्छरों की संख्या अवश्य घट जावेगी है।

यह बात भी वर्णनीय है कि मच्छर केवल एक विशेष अन्तर तक उड़ सकता है। अतः यदि मानुषिक बस्ती के चारों ओर किसी विशेष सीमा में समस्त तलीय जलाशय दूर कर दिये जावें तो निश्चय है कि वहां मच्छर नहीं पहुंचे सकेंगे। इस सिद्धान्त

(थियोरी) को बहुधा प्रयोग में लाया जा चुका है और इससे विस्मयोत्पादक लाभदायक फल प्राप्त हुए हैं।

न केवल पृथिवी की तल के जल का निकास आवश्यक तथा विचारनीय है प्रत्युत इस बात को भी पूर्ण रूप से विचार में रखना चाहिये, कि पुराने टीन व लकड़ी के डिब्बे, टूटे हुए चीनी के पात्र, तरबूज़ों के टुकड़े वा फलों के छिलके टूटी हुई बोतलें और इसी प्रकार के अन्य पदार्थ जिन में वर्षा का जल समा सके बहुत अन्तर पर अलग फेंके जावें, क्योंकि इन में से प्रत्येक वस्तु वर्षा का जल एकत्रित हो जाने से मच्छर झट इनके भीतर अंडे देने लग जाते हैं।

पृथिवी के बहुत से भागों में स्वास्थ्य रक्षा के पूर्ण उपाय निर्णित हो चुके हैं और आजकल बहुत कुछ उन्नति इस प्रकार के प्रान्तों में हो रही है, जो पहिले नितान्त घातक गिने जाते थे। पश्चिमीय अफ़रीक़ा का सारा ही भाग अपनी दूषित वायु युक्त जल वायु के कारण से चिरकाल तक "गोरों की क़ब्र" के भयानक नाम से प्रसिद्ध रहा है, परन्तु अब अंगरेज़ी तथा अन्य यूरुपीय नवीन बस्तियों में देशी निवासियों का आरंभिक विरोध दूर हो चुका है, और भयानक मृत्यु प्रमाण घटाने के लिये स्वास्थ्य रक्षा का बहुत सा काम किया जा चुका है। इन यत्नों में बहुत कुछ कृतकार्यता प्राप्त हो चुकी है, और अब बहुत से स्थान इस प्रकार के बन गये हैं जो अपेक्षया स्वास्थ्यमय हैं और जिन में श्वेत वर्ण की जातियां रह सकती हैं, और दूसरी ओर देशियों में भी रोगियों का निष्कर्ष बहुत बड़ी कोटि तक घट चुका है।

उष्ण कटिबंध के स्वास्थ्य रक्षा के सुधार के इतिहास में नहर पनामा की कथा कदाचित् सब से आश्चर्य जनक है। इस नहर का प्रबंध सन् १९०४ ई० में संयुक्त प्रान्त (अमरीका) की गवर्नमेंट के हाथ परिवर्तित हुआ और डाक्टर गोरगास के आधीन जिसने क्यूबा में भी बहुत कुछ स्वास्थ्य रक्षा को उन्नति दी थी, यहां स्वास्थ्य रक्षा का प्रबंध जारी किया गया। पानी के निकास का काम स्वीकार किया गया, और स्वास्थ्य रक्षा के अन्य

कार्यों की ओर भी ध्यान दिया गया जिसका फल यह हुआ कि सं० १९०६ ई० म जहां २३३ मृत्यु मैलेरिया से हुई थीं वहां १९०८ ई० में केवल ७३ हुई।

दूसरी ओर गोरों की बस्ती में समस्त रोगों से मृत्यु प्रमाण अब ४ प्रति सहस्र से न्यून रह गया है, और स्त्रियों तथा बच्चों में १० प्रति सहस्र से कम।

दूसरे देशों में भी ऐसे ही फल प्राप्त हुए हैं।

इसमाईलिया (जो कि नहर स्वेज़ में है) मेजर रास के निरीक्षण में सन् १९०३—४ ई० में स्वास्थ्य रक्षा का जो नियमित क्रम आरम्भ किया गया था, इसके कारण से अब मैलेरिया ज्वर कभी प्रबलता से नहीं फैलता। ऐसे ही राइयोडीजैनेरो में जो कि ब्राज़ील में है जहां किसी समय में पीत ज्वर से ५००० से अधिक तक मौतें हो चुकी थीं सन् १९०९ ई० में केवल ४ मौतें घटित हुई। यही बात क्यूबा तथा, अन्य रोगग्रसत केंद्रों पर चरितार्थ होती हैं।

वर्तमान काल के इस अभिषेणन का मनोरंजक तथा सविस्तर वृत्तान्त एक सचित्र पुस्तक में अंकित है, जो इसे समय "मच्छर वा मनुष्य" के नाम से श्री राबर्ट बाईस की लेखनी से निकली है, जिन का लेख उष्ण कटिबंध की गवेषण के सम्बन्ध में प्रमाणिक समझा जाता है।

यद्यपि उष्ण कटिबंध में चिकित्सोक्त स्वास्थ्य रक्षा प्रयोग में लाने से बहुत कुछ महत्त्व युक्त फल उत्पन्न से चुके हैं, तथापि यह इस महान् प्रस्ताव की अभी आरंभिक अवस्था है। अभी लाखों मीलों का क्षेत्र इस प्रकार का वर्तमान है, जिस के सम्बन्ध में इस प्रकार की कार्यवाही करना अवशिष्ट है, असीय पक्षपातों पर प्रबलता पाना आवश्यक है और विविध जातियों की अविद्या तथा आग्रह को दूर करना कृतकार्यता के लिये आवश्यक दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त कुछ अवस्थाओं में इस प्रयोजन के लिये इंजिनियरी के बड़े २ कार्य करने पड़ते हैं। शताब्दियों की इस वबा को दूर करने का काम जो मनुष्य ने अपने हाथ में

लिया है, कुछ सुगम नहीं है, क्योंकि यह तो तत्वतः प्रकृति की भौतिक शक्ति से एक प्रकार का संग्राम है। परन्तु अब बिगुल बज चुका है। भूमंडल के प्रत्येक भाग में मनुष्य को इस संग्राम में सम्मिलित होने का सन्देश पहुंच चुका है, और शिक्षित लोगों को आवश्यक है कि वे इन हाथियारों को लगा कर जो अभिनव विज्ञान ने इन्हें दिये हैं आगामी सन्ततियों के लिये इस महान् संग्राम में साहस और पुरुषार्थ के साथ सम्मिलित हों।

उष्ण कटिबंध में अभी बहुत से भाग इस प्रकार के शेष हैं, जिन्हें इस वबा से छुड़ाना आवश्यक है, जैसा कि दाक्षिणी नाईजेरिया तथा ब्राज़ील के न समाप्त होने वाले दलदल, अफ़रीक़ा, भारतवर्ष, और दक्षिणी अमरीका के वबाई बन, सैंकड़ों द्वीप जो रोगों के दुर्ग हैं, तथा उत्तरीय योरुप और अमरीका के ज्वरार्त मध्यम जल वायु युक्त प्रान्त अभी तक हमारे ध्यान के अपेक्षक हैं। प्रार्थना है कि यह विजय बीसवीं शताब्दी की महत्त्व पूर्ण विजयों में प्रविष्ट समझा जा सके।

सप्तम् परिच्छेद

टसी टसी मक्खी तथा निद्रा रोग ।

समाचारपत्रों के पाठक इस बात से अनभिज्ञ न होंगे कि कुछ काल से निद्रा रोग (Sleeping Sickness) नामी नये रोग का वृत्तान्त सुनने में आता है। इस रोग का परिभाषिक नाम (Tryponosomiosis) है परन्तु साधारण लोगों में इसका वही नाम प्रसिद्ध है, जो ऊपर अंकित किया जा चुका है। इस रोग के सम्बन्ध में बहुत सी विचित्र २ कहानियां वर्णन की जाती हैं और अभी तक लोग इसे एक रहस्यपूर्ण रोग समझते हैं।

कुछ काल से इस रोग के सम्बन्ध में पूर्ण गवेषण का क्रम जारी है और निद्रा रोग के बोर्ड की सहायता से जो विशेषतया इस रोग की गवेषणा के लिये स्थापित किया गया था, अब इतना हुआ है कि भिषकमंडली में इस रोग को भली भांति समझा जाने लगा है। इसके अतिरिक्त अब इन देशों में जहां यह रोग फैला हुआ है इसे रोकने के लिये प्रत्येक संभव प्रयत्न किया जा रहा है।

वर्तमान काल में निद्रा रोग अफ़रीक़ा महाद्वीप के केवल उन देशों में पाया जाता है जो भूमध्य रेखा के समीप हैं और इस भाग में वह पूर्व से पश्चिमीय समुद्र तट तक भली भांति फैला हुआ है। यह रोग वस्तुतः उपयोगी क्षेत्रों के भीतर झीलों तथा जल मार्गों के तटों पर पाया जाता है, अथवा यूं कहना चाहिये कि केवल इन्हीं भागों में वर्तमान है, जहां एक विशेष प्रकार की मक्खी जिसे टसी टसी मक्खी कहते हैं होती है।

अन्तिम सन् १९०१ ई० में इस रोग का कारण वह कीड़ा पाया गया, जो इस रोग के रोगी के रक्त में वर्तमान पाया जाता है।

डाक्टर फ़ोर्डी (Forde) ने जो गोम्बिया स्थान में एक अंगरेज़ के रक्त का जो उनका चिकित्सक था साक्षात्कार किया, और इस रक्त में इन्हें एक कीट दृष्टिगोचर हुआ, जो इस कीड़े से उपमा रखता था, जैसा कि कुछ वर्ष पहिले डाक्टर लेविस (Lewis) ने भारतवर्ष में चूहों के रक्त के भीतर देखा था। इस समय स्वर्गीय डाक्टर डट्टन (Dutton) मैलेरिया के एक अभियान के साथ इस नवीन बस्ती में रहते थे। उन से परामर्श किया गया। उन्होंने साक्षात्कार के पश्चात् यह विचार प्रगट किया कि यह कीड़ा ट्राइपोनोज़ोम (Tryponosome) है और इस समय यह बात पहिली बार ज्ञात हुई कि इस प्रकार के कीटाणु मनुष्य के रक्त में वर्तमान पाये जाते हैं। तदनन्तर यही कीड़ा एक और रोगी के रक्त में वर्तमान पाया गया, और डाक्टर डट्टन ने इसका नाम इस नवीन बस्ती के नाम पर जहां यह ज्ञात हुआ था ट्राईपोनोज़ोम गेम्बेन्स Tryponosome Gambense रक्खा।
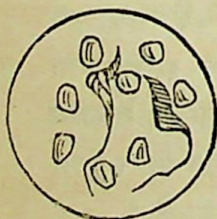
रक्त के भीतर ट्राईपोनोज़ोम के रूप में यही कीड़ा निद्रा रोग का कारण होता है।

इस के पश्चात् बहुत से अन्वेषकों को इस कीड़े से मनोरंजन उत्पन्न हो गया, और बहुत शीघ्र असंख्य रोगों के भीतर इस कीड़े की उपस्थिति देखी गई। इसके थोड़े ही काल पश्चात् इस बात का पूर्ण प्रमाण मिल गया, कि निद्रा रोग का कारण वस्तुतः ट्राईपोनोज़ोम गेम्बेन्स ही है। सन् १९०२ ई० में अंगरेज़ी गवर्नमेन्ट ने एक रायल सोसाईटी कमशिन यूगंडा को जहां निद्रा रोग प्रबल हो रहा था, भेजी और इस के अतिरिक्त लिवरपोल के स्कूल आफ़ ट्रापिकल मेडसिन की ओर से सिनिगेमियां तथा कांगो में टोलियां भेजी गईं। इस के पश्चात् यह बात सिद्ध की गई, कि इस कीटाणु को एक व्यक्ति से दूसरे तक पहुंचाने वाली एक विशेष प्रकार की मक्खियां होती हैं, जो अफ़्रीक़ा ही में पाई जाती हैं और जिन का नाम टसीट सी मक्खी प्रसिद्ध है और इन की भी एक विशेष जाति ग्लोसीना

पालपेलिस (Glossina Polpalis) नाम की है जो विशेष रूप से इस रोग को फैलाती है।

टसी टसी मक्खियों की अनुमानतः दस भिन्न जातियां इस समय तक ज्ञात हुई हैं, और कुछ बातों में वे वारबल मक्खियों से मिलती हैं जो इँगलिस्तान के खेतों में पाई जाती हैं। इनका रंग हल्का भूरा होता है और शरीर पर हल्की काली रेखायें होती हैं इनके पंखों में एक विशेषण पाया जाता है, जिसके कारण से वह पहचानी जा सकती हैं और विश्राम करते समय यह मक्खियां अपने पंखों को इस भांति लपेट लेती हैं, मानो वे क़ैंची के फल हों, सिर में तीक्ष्ण छेद करने और काटने वाला प्रोबोसिस लगा हुआ होता है, जो तीक्ष्ण दांतों तथा मनुष्य के दांतों की रचना की भाँति के क्रम के कारण से त्वचा के भीतर सुगमता से घुस जाता है। यह मक्खियां बहुत बड़ी मात्रा में रक्त चूसती हैं और यह बात वर्णनीय है कि जहाँ मच्छरों में केवल मादा रक्त पीती है यह नर मादा दोनों रक्त पीते हैं और दिन के समय ही रक्त चूसते हैं।

टसी टसी मक्खी
वास्तविक आकृति।

इन मक्खियों के सम्बंध में एक विशेष प्रतिपादनीय वार्ता यह है कि वह इन विशेष क्षेत्रों के भीतर जो झीलों, दरियाओं, नदियों तथा दलदलों के गिर्द स्थित हैं और जहां घना बन होता है पाई जाती हैं। वे जल से अधिक अन्तर पर कभी भी नहीं पाई जातीं और जिन क्षेत्रों में वे पाई जाती हैं वे लम्बे तथा तंग खंड हैं, जिनकी चौड़ाई केवल कुछ गज़ होती है, और लम्बाई कुछ मील से अधिक नहीं होती। यही कारण है कि इन क्षेत्रों को मक्खियों का प्रान्त लिखते हैं। इसी कारण से यह रोग केवल उन क्षेत्रों ही में पाया जाता है, क्योंकि रोग के विभाग का बहुत बड़ा सम्बंध मक्खियों के विभाग से है।

अनुमान है कि इन मक्खियों के विशेष २ स्थानों से विशिष्ट होने का कारण इनकी भोजन विधि है। अब से कुछ काल पहिले

प्रोफ़ैसर कास्व ने यह बात प्रगट की थी। कि टसी टसी मक्खियां मच्छरों के साथ लगी रहती हैं और इसी कारण से केवल इन प्रान्तों में पाई जाती हैं, जहां इस जीव की अधिकता हो।

टसी टसी मक्खियों में एक विशेष बात यह भी है कि दूसरी मक्खियों की भांति वे अण्डे नहीं देतीं, प्रत्युत बच्चे देती हैं। इनके लारवे नन्हे पीत वर्ण के कीड़े होते हैं, जो केले के वृक्षों की जड़ों में रहते हैं। यह बात अभी तक भली भांति समझ में नहीं आसकी कि टसी टसी मक्खियां वा ग्लासेनी एक से दूसरे स्थान तक क्योंकर फैलती हैं, परन्तु इस बात की आशंका अवश्य है, कि ये भयंकर मक्खियां अधिक विस्तृत प्रान्त में फैल जावें वा दूसरे देशों तक पहुँचे।

निद्रा रोग नींद की बीमारी वस्तुतः इस रोग की अन्तिम कोटि होती है, जिसका नाम ट्राईपोनेज़ोम कीड़े के नाम पर ट्राईपानेसोमीअसिस (Tryponosomiasis) पढ़ा हुआ है, इस रोग के आरंभिक लक्षण छूत दार टसी टसी मक्खी से कटने के १५ दिन पीछे प्रगट होते हैं। इस समय पहिले तो उष्णता सी हो जाती है, जिसके कुछ काल पश्चात् एक प्रकार के दाने से प्रगट होते हैं, तदनन्तर शनैः शनैः अन्य चिन्ह भी दिखाई देने लगते हैं यथा शिरो पीड़ा दिल का धड़कना, रुधिर का घट जाना। इन सब बातों के अतिरिक्त शरीर की ग्रन्थियां भी फूल कर पीड़ा करने लगती हैं। यह लक्षण न केवल महीनों प्रत्युत वर्षों चले जाते हैं, यहां तक कि रोग की अन्तिमावस्था जिसे निद्रा रोग कहते हैं प्रगट हो जाती है। रोगी सुन्न और दुर्बल हो जाता है कम्पवात उत्पन्न हो जाता है और अन्त में वह नितान्त अचेतन्यता की अवस्था में रह कर परलोकगामी होता है। यह भयानक तथा डरावना रोग मध्य अफ़रीक़ा में बहुत प्रबलता से फैला हुआ है। इसने कई प्रान्तों को जनशून्य कर दिया है, और कुछ प्रान्तों में आश्चर्य जनक शून्यता शीघ्रता से फैल रही है। यह रोग सदैव प्राण नाशक ही सिद्ध होता है, और इस से गोरे तथा काले एक से मरते हैं।

ट्राइपोनोज़ोम कीड़ा जो निद्रा रोग का कारण होता है, इकहरी कोठरी वाले पशुओं तथा प्रोटोज़ोआ की निकृष्ट जाति से सम्बंध रखता है, और परोटोज़ोआ की इस विशेष जाति को फ़लेगियट कहते हैं।

ट्राइपोनोज़ोम वस्तुतः इकहरी कोठरी का एक लम्बोतरा कीड़ा होता है, जिस के दोनों सिरे नोकीले होते हैं। कोठरी वा शरीर की लम्बाई के साथ गुज़रती हुई एक ऊंची नीची झिल्ली होती है, जो शरीर के सामने की ओर एक सूक्ष्म चाबुक के सदृश सूत्राकार में समाप्त होती है, जिसे फलेगेलम कहते हैं। शरीर के भीतर दो रचनायें देखी जाती हैं, एक तो अण्डाकार प्रकृतिक भाग और एक इस के साथ छोटा अंश जिसे क्लीफ़ारोप्लास्ट (Clipharoplost) कहते हैं। फ़लेगेलम का आरंभ इस अन्तिमोक्त भाग में होता है, और इसी के द्वारा इसकी सनियमता प्रयोग में आती है। जब यह कीड़ा रक्त में रहता है तो बहुत फुरतीला होता है और रक्ताणुओं में अपने फलेगेलम के बल से चलता हुआ गुज़रता है।

बैक्टीरिया की भांति इन विचित्र कीड़ों की भी शरीर के बाहर विशेष २ दशाओं में पालना की जा सकती है। यथा फ़ैबरीन युक्त रक्त अथवा तैयार किये हुए अगर (जापानी समुद्री घास) में जब इन्हें इस भांति पाला जावे, तो कभी २ इन के स्वरूप में परिवर्तन भी होता है, और संभव है कि वे कलिका के स्वरूप में एकत्रित होकर चेष्टा करने लग जावें।

वे इस योग्य होते हैं कि सीधे एक जीव के शरीर से दूसरे के शरीर में प्रविष्ट हो जावें, और दृष्टि से वे हीमा मीबा से बहुत कुछ भेद रखते हैं, जो मैलेरिया के प्रोटोज़ोआल कीटाणु होते हैं। यह बात भली भांति प्रसिद्ध है कि टसीटसी मक्खी यदि ऐसे पुरुष का रक्त चूसने के पश्चात् जिस के रक्त में ट्राइपोनोज़ोम कीटाणु वर्तमान हों किसी दूसरे स्वस्थ पुरुष को काटे तो इसी प्रकार वह रोगी पुरुष के कीटाणु उस के भीतर तुरन्त ही प्रविष्ट कर देने के योग्य होती है। इसके प्रतिकूल यह भी संभव है कि मक्खी किसी स्वस्थ

पुरुष को काट कर इसके भीतर रोग प्रविष्ट करदे, जिसको कीटाणु इसके भीतर विकास की एक विशेष क्रिया में से गुज़र चुके हों।

अणुवीक्षण यंत्र के द्वारा ट्राइपोनोज़ोम वा मनुष्य अथवा पशु के रक्त के भीतर रहने वाले अन्य कीटाणुओं का साक्षात्कार करने के लिये कीटाणु शास्त्राभिज्ञ एक विशेष काम करते हैं, जिसे परिभाषा में दाग़ लगाना कहते हैं। इसकी क्रिया विधि साधारणतः जटिल तथा क्लिष्ट होती है परन्तु साधारणतः इसकी अवस्था यह होती है कि रोगी के रुधिर का एक सूक्ष्म बिन्दु लेकर शीशे पर लगाया तथा शुष्क कर लिया जाता है। इस धब्बे के ऊपर द्रव धब्बा एनीलाइन रंगों से तैयार करके लगाया जाता है, और कुछ काल पश्चात् इस अधिक धब्बे को साफ़ कर दिया जाता है और शीशे को सुखा लेते हैं।

अब रक्त के इस धब्बे पर पतली स्वच्छ गोंद की बूंद जिसे कैनेडा बालसम कहते हैं फैला दी जाती है। इस क्रिया के कर चुकने के पश्चात् शीशे का एक अत्यंत सूक्ष्म खंड जिसे कवर स्लिप (Cover Slip) कहते हैं ऊपर रख दिया जाता है। इस समस्त का परिणाम यह होता है कि रुधिर का धब्बा वायु तथा मट्टी से सुरक्षित रहता है और इसको अणुवीक्षण यंत्र द्वारा देखा जा सकता है जब इस धब्बे को तीक्ष्ण अणुवीक्षण यंत्र के भीतर से देखा जावे तो रक्ताणु तथा कीटाणु बड़ी सुंदर रीति से दाग़दार दिखाई देते हैं और यदि एक से अधिक रंग प्रयोग किये गये हों तो कुछ रचनायें एक रंग की हो जाती हैं और कुछ दूसरे रंग की जिस से यह होता है कि दोनों की सुगमता से पहचान हो जाती है जैसे कि हम पहिले वर्णन कर चुके हैं। ट्राइपोनोज़ोम की वह विशेष जाति होती है, जो निद्रा रोग उत्पन्न करती है। इसके अतिरिक्त ट्राइपानोज़ोम की और भी जातियां हैं, जिनमें से कुछ पाशविक रोगों का हेतु सिद्ध होती हैं। कुछ जातियां पशुओं के रक्त में पाई तो जाती हैं परन्तु हानि रहित होती हैं और हानि रहित रीति से पशुओं के रक्त में कीटाणु की भी भांति जीवन व्यतीत करती हैं। जिस भांति निद्रा रोग के ट्राइपोनोज़ोम को टसी टसी मक्खी वा ग्लासीना

षालपा सी एक से दूसरे व्यक्ति तक पहुंचाती है, ऐसे ही इन कीटाणुओं की अन्य जातियों की भी अन्य काटने वाले कीड़े ही एक से दूसरे तक पहुंचाते हैं।

ट्राइपोनोज़ोम ब्रूसी (Tryponosome Brucei) नेगामा (Negama) रोग के कीटाणु होते हैं, जो टसी टसी मक्खी से उपजने वाला पशुओं का अत्यन्त घातक रोग है और अफ़रीका के प्रत्येक भाग में पाया जाता है। इससे रोगी पशु केवल कुछ ही महीनों में मर जाती है। इस रोग के कीटाणु फैलानेवाली टसी टसी मक्खी को ग्लासीना मोरसीटन्स (Glossina morsetons) कहते हैं, और जो घोड़े उस प्रान्त में से हो कर गुज़रें जहां इस मक्खी की अधिकता हो, उन्हें निस्संदेह इस रोग की छूत हो जाता है।

इसी भांति टाबानिडी अथवा घोड़े मक्खी ट्राइपोनोज़ोम ईवेन्सी (Tryponosome Evansi) नामक कीटाणु को फैलाती है जिस से सुर्रा (Surra) रोग उत्पन्न होता है, जो पूर्वीय देशों में घोड़ों, खच्चर तथा ऊंटों का एक साधारण रोग है।

दक्षिणीय तथा मध्य अमरीका में घोड़ों तथा गदहों के भीतर मैलडीकैडरास Maldicaderas नामक एक अत्यन्त विचित्र रोग पाया जाता है। इसका कारण ट्राइपोनोज़ोम ईक्वीनम Tryponosome Equinum नामक कीटाणु होते हैं। यह रोग कुछ महीने रहकर अन्तिम घातक सिद्ध होता है। इसमें पशु की पिछली टांगों में कंपवात पड़ जाता है,और जब वह चलता है,तो पीछे२ घसीटती चली जाती हैं। इस जाति का एक रोग ज़ोस फ़ाना (Zousfana) के नाम से अलजेरिया में पाया जाता है, जो घोड़ों को होता है, और इसका कारण भी यही कीटाणु होते हैं। अभी तक ठीक ज्ञात नहीं हो सका कि ये कीटाणु एक से दूसरे पशु तक क्योंकर पहुँचते हैं तो भी ख्याल किया जाता है कि इस का कारण अश्व शाला की मक्खी जिस का पारिभाषिक नाम स्टोमोक्सिस कोलसी ट्रेन्स (Stomoxys colsitrance) है होती है।

टाईपानोज़ोम जाति के ऐसे कीटाणु जो किसी रोग को उत्पन्न नहीं करते, बहुत सी जातियों में बहुधा दूध पिलाने वाले जीवों पखेरूओं तथा मछलियों के रक्त में वर्तमान पाये जाते हैं, इनमें से टाईपोनोसोमल्यूसी इसी दृष्टि से एक विशेष मनोरंजन रखता है कि उसका सब से पहिले ज्ञात हुआ था। इसे सन् १८७९ ई० में डाक्टर लेटिस ने कलकत्ता में चूहों के रुधिर में वर्तमान पाया था। ज्ञात हुवा है कि जिस जीव के रक्त में कीटाणु वर्तमान हों, उसे इन से कुछ कष्ट नहीं होता और यह बात सिद्ध होचुकी है, कि इन कीटाणुओं को एक चूहे से दूसरे तक पहुँचाने का कारण एक प्रकार का चूहों का पिस्सू होता है, जिसका पारिभाषिक नाम पोलेक्स फेसियाईस है।

अष्टम परिच्छेद

प्लेग, चूहा तथा पिस्सू

शताब्दियां बीत चुकी है, परन्तु अभी तक प्लेग से बढ़ कर भयंकर कोई रोग सुनने में नहीं आया। इस में सन्देह नहीं कि अन्य वबाओं ने लाखों की संख्या में मनुष्यों को अपना आखेट बनाया है, तथापि ताऊन के सम्बंध में यह वार्ता अति वर्णनीय है कि इस ने एक भयंकर बला की भांति सारे संसार में अपनी भुजायें फैला कर अरबों को अपना ग्रास बना लिया है।

पूर्व की अत्यन्त प्राचीन सभ्यता में ताऊन के भयंकर आक्रमणों की कतिपय दन्तकथायें इस समय तक क़ायम चली आती हैं और मिश्र में खीष्टाब्द के आरंभ में इस की उत्पन्न की हुई तबाही के अधिक शुद्ध वृत्तान्त हस्तगत हाते हैं, परन्तु विदित होता है कि यूरोप में ताऊन उस समय तक नहीं फैली जब तक कि छठी शताब्दी खीष्टाब्द में वह पूर्व से पश्चिम तक फैल गया और ५० वर्ष तक प्रबल रहा। एक तरह पर इसने यूरोप की सारी बस्ती की सफ़ाई कर दी थी।

इसके पश्चात् कभी २ संसार के विविध भागों में ताऊन भयंकर बल के साथ फैलती रही, यतः सत्तरहवीं शताब्दी खीष्टाब्द में आंगलस्थान में बहुत प्रबल थी, उस समय इसका नाम ब्लैक डेथ (काली वबा) था। लंदन में इस समय ४६०००० निवासियों की बस्ती थी। इस से प्रत्येक ६ पुरुषों में एक व्यक्ति मृत्यु का लक्ष्य हुआ। यह वबा कितनी भयानक थी और लोगों पर इसने कैसे भयंकर आक्रमण किये, इस बात का अनुमान उस समय के इतिहास लेखकों के लिखित वृत्तान्तों अथवा उस पुस्तक के पढ़ने से होता है, जो प्रसिद्ध पत्रकार डीफ़ो (Defoe) ने "प्लेग कथा" के नाम से लिखी थी। इस अवसर पर जिस प्रकार के दृश्य देखने में आते थे उन्हें रचायिता ने बड़े सौंदर्य के साथ अंकित किया है। यथा लोगों का उन घरों के द्वारों से परे रहना जिन पर चाक से चिन्ह बना

दिये जाते थे, आधी रात के समय शवों का छकड़ों में लाद कर उन का श्मशानों की ओर पहुंचाया जाना जो किंग्स क्रास के गिर्द थे, विशेष रूप से भरती की हुई पुलीस का चुग़ा पहने लाठियां हाथ में लिये लोगों पर एक अनिष्ट प्रभाव उत्पन्न करना लोगों का पड़ोस के ग्रामीन प्रान्तों में आश्रय लेना। परन्तु इस सब वृत्तान्त के पश्चात् जब हम महान अग्नि दाह का वृत्तान्त पढ़ते हैं, जो ईश्वर ने अपनी दया तथा कृपा से देश को वबा से साफ़ करने के लिये उत्पन्न की थी, तो हम तुष्टि का श्वास लेते हैं। (लन्दन में उन दिनों भयंकर आग लगी थी जिस से करोड़ों की हानि हुई परन्तु इस प्राकृतिक चिकित्सा से ताऊन जाती रही थी-अनुवादक) यद्यपि उस समय के पीछे केवल ग्लासगो में सन् १९०० ई० तथा सन् १९०१ ई० में दो बार प्लेग मन्द रूप से प्रादुर्भूत हुई है, और इन दोनों अवसरों पर इस से केवल १६ मौतें घटित हुई हैं, तथापि इसके अतिरिक्त न तो यह इँगलिस्तान में और न यूरोप के किसी अन्य देश में प्रादुर्भूत हुई है। निस्संदेह कुछ अन्य देशों में कई बार ज़ोरों पर रह चुकी है। सन् १८९४ ई० में हांग कांग के अंदर इस ने वबाई रूप धारण किया था जिस के पश्चात् यह क्रमशः विविध देशों में पहुंचती रही है, सन् १८९६ ई० में इस ने मुम्बई में अपना पदारोपण किया और वहां से शीघ्र समस्त उत्तरीय भारत और फिर शेष प्रान्तों में फैल गई, अनुमान किया गया है, कि केवल सन् १९०४ ई में ताऊन से दस लाख मौतें घटित हुई थीं।

गत दिनों में यह अफ़रीक़ा के कुछ बंदरगाहों में भयंकर रीति से फूट निकली और इतिहास में पहिली बार इसने दक्षिणीय, तथा मध्य अफ़रीक़ा में निज पदारोपण किया।

सन्० १८९४ ई० में जबकि ताऊन हांग कांग में फैली हुई थी कीटासाटो (Kitasato) नामक एक जापानी चिकित्सक ने इन कीटाणुओं की गवेषणा की जो इस रोग का हेतु सिद्ध होते हैं। अब इन कीटाणुओं का नाम वैसीलस पेस्टिस Bacillus Pestis पड़ चुका है और यह बैक्टीरिया की जाति के छोटे कीड़े होते हैं।

इस बैसीलस के साथ एक व्यक्ति से दूसरे के शरीर में चले जाने से ताऊन एक से दूसरे मनुष्य को पंहुचती रहती है। इसी कारण से दुर्भाग्य से दो जापानी डाक्टरों को ताऊन निकल आई, क्योंकि इन की अंगुलियों पर घाव थे। ऐसे ही वाईना की लैबोरेटरी में जहां इन कीड़ों के सम्बन्ध में अनुभव होरहे थे एक डाक्टर इस में ग्रस्त होगया।

सन् १८३५ ई० में जब कि इस रोग का कारण अभी ज्ञात नहीं हुआ था ताऊन के रोगियों के रक्त का टीका क़ाहिरा में दो अपराधियों को किया गया। परिणाम यह हुआ कि वे दोनों इस रोग का आखेट बन गये।

शताब्दियों से यह बात देखने में आ रही है कि ताऊन उस समय अधिक प्रबलता से फैलती है, जब चूहे मरने लगें। इस लिये ख्याल किया गया है इन दोनों बातों में कुछ न कुछ सम्बंध अवश्य होगा।

वर्तमानकाल में यह बात निर्णय हो चुकी है कि चूहे और कई अन्य वैसे जीव अपने स्थन में ताऊन रोग में ग्रस्त होते हैं, और फिर उसकी छूत मनुष्य तक पहुंचाते हैं। इस लिये यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि क्योंकर इस रोग के कीटाणु चूहे से मनुष्य तक और इस मनुष्य से दूसरे तक पहुंचते हैं।

अब हम वर्तमानकाल की अत्यन्त आवश्यक चिकित्सा शास्त्र सम्बन्धी गवेषणा का वर्णन करते हैं, जिसने समस्त संसार में प्रसिद्धि प्राप्त करली है। यह बात पूर्णतया सिद्ध हो चुकी है, कि ताऊन के कीटाणु को फैलाने वाला एक छोटा सा कीड़ा अर्थात् पिस्सू होता है। यह बहुत से साक्षात्कारों द्वारा प्रमाणित हो चुका है। स्वस्थ चूहों को इसी पिंजरे में बन्द किया गया जिस में ताऊन के रोगी चूहे बन्द थे और यह बात देखनें में आई कि स्वस्थ चूहों को उस समय तक ताऊन की वेदना नहीं हुई जब तक कि रोगी चूहे मर न चुके। इसके अतिरिक्त असंख्य परीक्षण किये गये, जिससे यह महत्त्वपूर्ण गवेषणा प्रयोग में आई कि यदि चूहों को एकत्रित करने से पहिले उनके समस्त पिस्सू दूर कर दिये जावें,

तो यद्यपि पश्चात रोगी चूहे मर जाते हैं, तथापि स्वस्थ चूहे अच्छी अवस्था में रहते हैं। इससे प्राकृतिक रूप से यह परिणाम निकाला गया कि पिस्सूओं के कीटाणु का एक से दूसरे स्थान में बहुत कुछ सम्बन्ध है। इसके पश्चात् पिस्सूओं के स्वभाव तथा ताऊन के बैसीलिस से इनके सम्बन्ध में बहुत कुछ विचार किया गया।

जब अणुवीक्षण के द्वारा-परीक्षा की गई तो ज्ञात हुआ कि बैसीलिस पेस्टिस इन पिस्सूओं के शरीर में वर्तमान है, जो ताऊन से पीड़ित चूहों अथवा अन्त जीवों का रक्त चूस चुके हों। यह भी देखा गया, कि यह कीटाणु पिस्सूओं के आमाशयों में रह कर बढ़ते और बड़े होते हैं।

अब चूहों के स्वभाव का कुछ निरूपण किया जाता है।

चूहे जीवों की उस जाति से सम्बन्ध रखते हैं, जिसे परिभाषा में रोडेंट्स (Rodents) कहते हैं। वे अनुमानतः संसार के प्रत्येक भाग में वर्तमान पाये जाते हैं। और सदा मिलकर रहते हैं। कई जातियां यथा जलमूषक आदि वन्य हैं, परन्तु प्रायः मानुषिक बस्ती के भीतर अथवा उसके समीप रहते हैं, कुछ जातियों के चूहे ऐसे हैं, जो दूसरों की अपेक्षा मनुष्य के पास रहना अधिक अच्छा समझते हैं यथा साधारण श्याम वर्ण मूषक वा मेसरैटिस (Mas Rattis) जो सर्वदा घरों ही में रहता है, जब कि मोस डेकूमेन्स (Mos Decumans) नामक भूरे वर्ण का चूहा अंधेरे तथा आर्द्रस्थानों यथा नालियों तथा बदररोंओं में रहता है और केवल उसी समय घरों में प्रविष्ट होता है, जब उसे भोजन की तलाश हो।

चूहे देखने में चाहे कितने छोटे प्रतीत होते हैं तथापि इन में विस्मय जनक तर्क शक्ति दिखाई देती है। भय की अवस्था में वा क्षुधा से पीड़ित होकर यह जीव जिस प्रकार की चतुराईयां करता है, इसकी सैंकड़ों कहानियां सुनने में आती हैं और यह बात प्रसिद्ध है कि जब कोई जलयान समुद्र में निमग्न होने लगता है तो पहले ही से इसे छोड़ कर स्थल की ओर तैरने लगते हैं। दुःख से

बचने का स्वभाव इनके भीतर यहां तक प्रविष्ट है कि जब इनके भीतर कोई वबा फैली हुई हो तो उनमें से प्रायः जो इस योग्य हों शीघ्रता से वबा युक्त प्रान्त को छोड़कर किसी दूसरे स्थान पर पहुंच जाते हैं। ताऊन के फैलने का बहुत बड़ा कारण इन जीवों का एकाएकी स्थान परिवर्तन करना ही होता है, क्योंकि यह निश्चित बात है कि इन स्थान परिवर्तन करने वाले चूहों में कुछ एक रोगी भी होंगे।

अब यह बात स्मरण रखने योग्य है कि बहुधा जीवों की भांति चूहे के शरीर पर भी विशेष २ दूसरे शरीरों पर चलने वाले कीटाणु वर्तमान रहते हैं, जिन में अधिक वर्णनीय पिस्सू हैं। पिस्सूओं की जिन का पारिभाषिक नाम पोली सीडी (Policidoe) है, एक सौ से अधिक अधिक जातियां हैं और यह इन वस्तुहीन कीड़ों की श्रेणी में आते हैं, जिन्हें कीटशास्त्राभिज्ञ अफ़ानीप्टेरा (Aphaniptera) कहते हैं। दूसरे कीड़ों और इन में एक वर्णनीय अन्तर यह है कि इनके दोनों पार्श्व बहुत कुछ भिचे हुए होते हैं। इससे इनका स्वरूप विचित्र दिखाई देता है, और इन्हें सुगमता से पहचान लिया जा सकता है।

पिस्सू के शरीर की व्याख्या अत्यंत जटिल है। इस लिये हम इस के सम्बंध में यहां इसके अतिरिक्त और कुछ वर्णन करना नहीं चाहते, कि इस के मुख के अंग चूसने के योग्य बने हुए होते हैं। यह एक प्रकार की खोखली नाली प्रतीत होती है जिस का सिरा दन्दानेदार होता है। इस के शरीर पर कंघी के सदृश छोटे कड़े बाली पंक्तियां होती हैं, जिन्हें पेंटी पिगसीडियल (Antepygsidial) बाल कहते हैं और इन्हीं से विविध जातियों की पहचान की संभावना है। पिस्सू तथा इन के अंडे सुगमता से किसी घरेलू जीव के शरीर पर से प्राप्त किये जा सकते हैं और अणुवीक्षण यंत्र के द्वारा देखा जाये तो कुछ अत्यंत मनोरंजक बातें देखने में आती हैं।

अवशिष्ट कीड़ों की भांति ये भी अंडे देते हैं। ये अंडे उस जीव की समूर पर पड़े रहते हैं, जिस पर कि पिस्सू रहते हों, और कुछ दिन पीछे इनमें से लारवी निकल आते हैं।

लारवी अत्यंत नन्हे २ कीड़ों की जाति के श्वेत जीव होते हैं, और इन के सिर पर एक विचित्र हवाई थैली के स्वरूप की कोई वस्तु होती है जिसे वे फैला तथा इस भांति बाहर निकलते समय अंडे के छिल्के को फोड़ सकते हैं। प्रौढ़ पिस्सू की भांति इन के मुख भी चूसने योग्य होते हैं, और वे रक्त पीकर ही निर्वाह करते हैं।

कुछ दिन पश्चात् एक कुकुन (कोआ) तन लेते हैं, और इसके भीतर से एक पक्ष में प्रौढ़ पिस्सू निकल आते हैं। वे इस जीव की समूर ही में रहते तथा रात्रि के समय रक्त चूसते हैं।

यह बात स्मरणीय है कि किसी विशेष जीव से सम्बंध रखने वाले पिस्सू इसी जीव के साथ लगे रहते हैं और कदाचित् ऐसा होता है, कि वह इस जीव को छोड़ कर किसी अन्य की ओर ध्यान दें। वह एक जीव पर कालक्षेप करना अच्छा समझते हैं, यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि विशेष २ अवस्थाओं में इनमें से बहुधा स्वतः शरीर से गिर पड़ते हैं, अथवा इस जीव को छोड़ कर किसी अन्य जीव की ओर जाते हैं।

एक अत्यंत कठिन बात यह है कि जब कोई जीव रोगी होता है अथवा मरता है तो उस के पिस्सू उसे छोड़ तुरन्त किसी दूसरे जीव की ढूंढ में चल खड़े होते हैं।

विशेष २ जातियों के पिस्सू विशेष २ जातियों के जीवों से विशिष्ट होते हैं, यथा पोलेक्स इर्रीटेन्स (Polex irritans) केवल मनुष्य पर ही आक्रमण करता है और पोलेक्स सीराटी सेप्स (Polex serratiseps) प्रायः घरेलू जीवों पर पाया जाता है, जब कि दो प्रकार के पिस्सू जो भूरे तथा श्याम वर्ण के चूहों से विशिष्ट हैं, इन के नाम क्रमशः पोलेक्स फेसीआटस (Pulex Faseiatus) तथा पोलेक्स चियोपिस (Polex chiopis) हैं।

यदि कोई जीव जिस पर ये पिस्सू वर्तमान हों रोगी हो जावे अथवा मर जावे, अथवा किसी और कारण से पिस्सू उसके शरीर से गिर जावें, और इसी प्रकार का अन्य जीव कहीं आस पास उपस्थित न हो तो पिस्सू भूखा मरने की अपेक्षा यह अच्छा समझते हैं कि किसी अन्य उष्ण रक्त वाले जीव को जिसके पास वे पहुंच

सकें जो चिमटें, यही कारण है कि यद्यपि मनुष्य का प्राकृतिक पिस्सू पोलेक्स इर्रीटेन्स है, तथापि बहुधा पोलेक्स सीराटीसेप्स भी जो कुत्तों, बिल्लियों तथा अन्य जीवों का पिस्सू है, इस पर आक्रमण कर देता है।

अब हम इस बात पर विचार करते हैं कि प्लेग के कीटाणु क्यों कर पिस्सू से चूहे तथा चूहे से मनुष्य तक पहुंचते हैं?

यद्यपि श्याम तथा भूरे दोनों रंगों के चूहों का ताऊन ग्रस्त होना अनुमित होता है तथापि तत्त्व यह है कि मनुष्य तक छूत पहुंचाने का बड़ा कारण काला अथवा साधारण घरेलू चूहा ही होता है।

कल्पना करो कि किसी विशेष घर में जिसका नाम हम 'अ' रखते हैं, कुछ चूहों को ताऊन की छूत उत्पन्न हो गई है। इसके बहुत से कारण होते हैं। संभव है इनमें से यह छूत पास के भूरे रंग के नालियों में रहने वाले चूहों से उत्पन्न हुई वा छूत युक्त अन्न वा चीथड़ों से उत्पन्न हो गई हो, अब कल्पना करो कि इस घर में छूत युक्त चूहों में से कुछ इस रोग से मर जाते हैं और शेष डर कर पास के घर "आ" में चले जाते हैं। इस अवस्था में वह पिस्सू पोलिसीज़ च्यूपिस तुरंत इन चूहों के शरीर को छोड़ देते हैं जो 'आ' अंकित घर में मृत पड़े हों अथवा रोगी हों और किसी नये जीव को ढूंढने लगते हैं। यतः समस्त स्वस्थ अथवा अनुमानतः ऐसे चूहे घर छोड़ कर भाग चुके होते हैं, इस लिये पिस्सू उस उष्ण रक्त वाले जीव से जा चिमटते हैं, जो सब से पहिले इन्हें मिल जाय और संभव है कि यह जीव इस घर का रहने वाला कोई मनुष्य हो।

यतः ये पिस्सू छूत युक्त चूहों के शरीर पर रह चुके होते हैं, अतः उनके शरीरों में ताऊन के कीटाणु की एक विशेष संख्या वर्तमान होना संभव है। जब ये पिस्सू रक्त चूसने के प्रयोजन से इस पुरुष की त्वचा में छेद करते हैं तो इन कीटाणुओं में से कुछ एक इस के भीतर प्रविष्ट हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि वह पुरुष ताऊन ग्रस्त हो जाता है, और इस के अनन्तर इसी

भांति पिस्सूओं के द्वारा अथवा किसी अन्य प्रकार से इसकी छूत पड़ोसियों तक पहुंचती है।

इन चूहों में से जो 'आ' अंकित घर की ओर गये थे कई एक ऐसे भी थे कि जब वे 'अ' अंकित घर से भागे तो उनमें ताऊन के कीटाणुओं की छूत वर्तमान थी, इस लिये नये स्थान में पहुंचने के कुछ काल पश्चात ऐसे चूहे मर जाते हैं वहां से बचे खुचे चूहे इस घर के चूहों के साथ 'इ' अंकित किसी अन्य स्थान की ओर भागते हैं, और इसी भांति एक घर से दूसरे में ताऊन फैलती जाती है। मार्ग में जो और चूहे इन्हें मिलते हैं उन्हें भी छूत उत्पन्न हो जाती है। सार यह कि क्रिया आरम्भ रहती है, यहां तक कि प्रान्त अपेक्षया मलीन हो तो ताऊन बहुत शीघ्र वश से बाहर हो जाती है, और सहस्त्रों व्यक्तियों के छूत उत्पन्न हो जाती है।

जिन जलयानों में अन्न लद कर जाता है वे बहुत बड़ी सीमा तक ताऊन फैलाने के उत्तरदाता होते हैं। कल्पना करो कि जहाज़ किसी ऐसे बंदरगाह पर ठहरता है जहां ताऊन फैली हुई है। वहां से कुछ चूहे उसमें सवार हो जाते हैं और किसी सुरक्षित स्थान पर जा उतरते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि ताऊन फैलने के सारे कारण अभी तक ज्ञात नहीं हो सके, तथापि चूहों के पिस्सुओं के द्वारा इसके प्रचार के वाद की समर्थना में यहां तक साक्षियां एकत्रित हो चुकी हैं, कि आवश्यक प्रतीत होता है कि मध्य जातीय स्वास्थ्य रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध किया जावे, और ताऊन युक्त प्रान्तों में कार्यवाहियां सख़्ती से प्रयोग में लाई जावें जिससे ताऊन अन्य देशों तथा प्रान्तों तक पहुंचने न पावे।

गत कतिपय वर्षों के भीतर जो आंकड़े एकत्रित किये गये उनसे ज्ञात होता है कि जब से यह रीति प्रचलित की गई है, इससे कहां तक लाभ प्राप्त हुआ है। इस विषय में जो कार्यवाहियां की जा सकती हैं उन्हें साधारणतः दो भागों पर विभाग किया जा सकता है।

(१) क्वारंटीन (कुरन्तीना) अथवा छूत युक्त लोगों तथा वस्तुओं को पृथक् रखना।

(२) चूहों, पिस्सुओं तथा अन्य इसी प्रकार के जीवों का विनाश जिनके द्वारा प्लेग के प्रचार की संभावना हो।

कुरन्तीना के सम्बंध में विविध प्लेग कमीशनों तथा स्वास्थ्य रक्षा के बोर्डों ने बहुत से कठिन नियम संपादित किये हैं इनमें से कुछ आवश्यक नियमों का आशय निम्नांकित है।

(१) जब कोई जलयान किसी ऐसे विदेशीय बंदरगाह से आता है, जिसके सम्बंध में ज्ञात हो कि वहां ताऊन है तो बंदरगाह के शासक बड़ी सख्ती से जिज्ञासा करते हैं और यदि आवश्यक समझा जावे तो तट पर गमनागमन की आज्ञा देने से पूर्व चूहों तथा माल असबाब की इस प्रकार का समीक्षण किया जाता है, जिससे ज्ञात हो सके कि इनमें से किसी प्रकार के कीटाणु वर्तमान हैं वा नहीं।

(२) यदि जलयान सम्बंधी गवेषणा हो जावे, कि ताऊन की छूत वर्तमान है तो उसे कुरन्तीना में डाला जाता है, किसी व्यक्ति को उस समय तक जलयान पर सवार होने वा उतरने नहीं दिया जाता, जब तक शासकों की इस विषय में तुष्टि न हो जावे, कि इस जलयान में अब किसी प्रकार की छूत नहीं रही।

(३) जलयान के जिस माल असबाब के विषय में सन्देह हो कि इसमें ताऊन के कीटाणु वर्तमान हैं तो इसे या तो नष्ट कर दिय जाता है अथवा धूप पहुंचा कर वा किसी अन्य रीति से साफ़ कर लेते हैं।

इस बात पर ज़ोर दिया जाता है कि जहां तक संभव हो चूहों को नष्ट किया जावे। इस की कई रीतियां हैं। यदि सम्भव हो तो इन्हें पिंजरों में पकड़ कर इन का समीक्षण किया जाता है, कि क्या इनमें ताऊन के कीटाणु वर्तमान हैं वा नहीं और इसके पश्चात् इन्हें इसी प्रयोजन के लिये बनी हुई अंगारधानिका में मार कर जला दिया जाता है।

चूहों को पकड़ कर इन पर लेबल लगा दिये जाते हैं, और तदनन्तर यदि इन में छूत विदित हो तो इन घरों को जिन से वे पकड़े गये हों कुरन्तीना में प्रविष्ट कर दिया जाता है। चूहों तथा पिस्सूओं को नष्ट करने के लिये जहाज़ों में तथा स्थल पर किसी प्रकार कीटाणुघ्न धूम उत्पन्न किये जाते हैं।

इस के अतिरिक्त ताऊन ग्रस्त प्रान्तों में चूहों का बिष वा रैट वेसै जो वर्तमान काल में ज्ञात हुआ है, विभक्त किया जाता है, जिस से कि इसके द्वारा चूहों को नष्ट किया जा सके। यदि लोगों को पृथक् रखने के लिये कैम्प लगाये जावें तो चूहों आदि को इन के भीतर प्रविष्ट होने से रोकने के लिये प्रत्येक संभव प्रयत्न किया जाता है। इन सब बातों के अतिरिक्त अब बस्ती की अवस्था पर स्वास्थ्य रक्षा के नियमों के विचार से ध्यान दिया जाता है, और लोगों को स्वास्थ्य रक्षा तथा मानुषिक रक्षा की आरंभिक बातें सिखाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

(अनुवादक की ओर से टिप्पणी)

हमारी सम्मति में चूहों को इस भांति निर्दयता से नष्ट करने का लाभ बहुत नहीं होता है। हम ने कई स्थानों में देखा है कि जहां चूहों के नष्ट करने का प्रयत्न बहुत जारी रहा वहां चूहे अधिक दिखाई दिये। चूहे बेचारे स्वयं रोग के भय से भागते हैं, प्रत्युत घर वालों को सूचित करते हैं। ऐसी विधियां हो सकती हैं कि घरों से चूहे निकल जावें। इस विषय में हमारी उर्दू पुस्तक जिस में प्लेग से सुरक्षित रहने के उपाय अंकित हैं पढ़ें इसका मूल्य ।≥)॥ है।

नवम् परिच्छेद

चिचड़ियां तथा रोग।

चिचड़ियों को जीवों की जाति अराचैंडियां (Aarchandia) की अकारि (Accari) श्रेणी में प्रविष्ट समझा जाता है। मकड़ियां भी इसी श्रेणी के अंतर्गत हैं। तत्त्वतः वे कीड़ों की श्रेणी में नहीं आतीं, परन्तु इनके स्वभाव तथा कीटाणु फैलाने की विधियां कीड़ों से इतनी मिलती है कि इनके लिये भी एक विशेष अध्याय रखना आवश्यक ज्ञात हुआ है।

यह चिचड़ियां बहुत सी बातों में कीड़ों से भिन्न होती हैं विशेष करके इस दृष्टि से इनके शरीर में पेन्टी वा 'फ़ीलर'(नोक जो अनुभव करती है) नहीं होती। इसके अतिरिक्त इनकी टांगें आठ होती हैं जब कि कीड़ों की केवल ६ होती हैं।

चिचड़ियों को दो बड़े विभागों पर विभक्त किया जा सकता है, अर्थात् अरगा सीड़ी (Arga sidae) और इक्सोडीडी (Ixodidae) जिन्हें एक दूसरे से सुगमता से पहचाना जा सकता है। इक्सोडीडी जाति की समस्त चिचाड़ियों में पिछली ओर एक प्लेट वा ढाल होती है, जिसे सकोटम कहते हैं, और सिर भली भांति आगे को निकला हुआ होता है, परन्तु इसके विपरीत अरगासिडी जाति की चिचड़ियों में स्कोटम वर्तमान नहीं होता, और यदि चिचड़ी को पीठ की ओर से देखा जावे, तो सिर नितान्त दिखाई नहीं देता। कुत्तों में दो प्रकार की चिचड़ियां लगी हुई देखी जा सकती हैं और साधारण पहचान के लिये यह वर्णन कर देना आवश्यक विदित होता है, कि कुछ २ काले रंग की छोटी चिचाड़ियां इक्सोडोडी तथा भूरे रंग की मोटी तथा रक्त से परिपूर्ण चिचड़ियां अरगासिडी जाति से सम्बन्ध रखती हैं।

दोनों प्रकार की चिचड़ियां बहुत रक्त चूसने वाली होती हैं और अपने मुंह के अगले भाग से जिसे हास्टालिम कहते हैं, छेद करके रुधिर चूसती हैं। जूं जूं चिचड़ी रक्त चूसती जाती है,

इसका शरीर फूलता जाता है, यहां तक कि अन्तिम वह बहुत ही बड़ा हो जाता है। जो चिचड़ी केवल पाव इंच की हो वह भी रक्त चूस कर एक इंच के बराबर हो जाती है, और देखने में चमकदार काले संग मरमर की भांति होती है।

चिचड़ियां रक्त चूसने की विविध कोटियों में, बहुत बड़ी संख्या में, कुत्तों, घोड़ों तथा ढोरों के शरीर पर उष्ण कटिबंध के समस्त देशों में पाई जाती हैं।

इनके मुख का वह भाग जिससे छेद करते हैं, विचित्र रीति से बना हुआ होता है। सिर से आगे की ओर निकला हुआ एक खड्ग की जाति का भाग होता है, जिस में पीछे की ओर को मुड़े हुए तीक्ष्ण दांतों की कुछ पत्तियां होती हैं। इस भाग को हाईपोस्टोन (Hypostone) कहते हैं। इसके अतिरिक्त सिर से आगे को निकले हुए हाईपोस्टोन से समानन्तर दो नालीदार आच्छादन होते हैं, जिनके भीतर दांत वर्तमान होते हैं। इनके बीच दो नीचे के जबड़े होते हैं, जो एक जड़े हुए भाग के स्वरूप में जिसे डजट कहते हैं समाप्त होते हैं,। इस डजट में भी तीक्ष्ण हुक लगे होते हैं।

इन समस्त भागों के कारण से चिचड़ी उस जीव के साथ जिसका यह रुधिर चूसती हो लगी रहती है। जब माता पूर्ण रूप से रुधिर चूस ले जिस में कई दिन बीत जाते हैं तो वह उस जीव पर से गिर पड़ती है और भूमि पर अंडे देने लगती है। इसमें एक सप्ताह वा इससे अधिक समय लग जाता है, जब कि कई सहस्रों अंडे देकर माता मर जाती है।

चित्र नं० ९
चिचड़ियां

१ कछुए की इक्सोडीन चिचड़ी।
२ हिरण की अरगासीन चिचड़ी।
३ इक्सोड़ीन चिचड़ी का मद्दरवा प्राकृतिक आकृति से १½ गुणा बड़ा दिखाया गया है।
४ चिचड़ी के अंडे ६⅔ गुणा बड़े दिखाये गये हैं।

कुछ सप्ताहों के पश्चात् अंडों में से लारवी निकल आते हैं, जो नन्हे छः टांगों वाले जीव होते हैं। वे घास वा झाड़ियों की

शाखाओं में लगे रहते हैं और जूं ही कोई उष्ण रुधिर वाला जीव पास से गुज़रता है उस पर गिर कर उसके शरीर से लग जाते हैं।

रुधिर चूसने के पश्चात् वे जीव को छोड़ देते हैं।

अब कुछ सप्ताहों तक लारवा नितान्त अचेत पड़ा रहता है। इसके पश्चात् वह निम्फ़ के स्वरूप को धारण करता है, उसी गत क्रिया की पुनरावृत्ति करता है अर्थात् किसी गुज़रने वाले जीव से लग कर रक्त चूसने लग जाता है। जब रक्त से पेट भर जाता है, तो गिर कर विश्राम करता है और आठ टांगों वाली चिचड़ी बन जाता है।
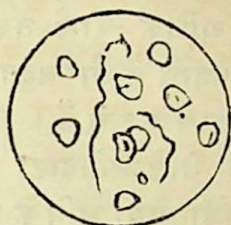
रुधिर के भीतर स्पेलय जो पुनरावर्तक ज्वर का कारण होते हैं, वास्तविक अवस्था से ७०० गुणा बड़ा दिखाया गया है।

चिचड़ियों की दो जातियां जो ऊपर कही गईं, उन में इन स्वभावों में पारस्परिक रूप से किञ्चित् अन्तर पाया जाता है, यथा अरगासीनी जाति की चिचड़ियां बहुत से स्वरूप बदलती हैं और दिन के समय छिपी रहती हैं और केवल रात ही को रुधिर चूसती हैं। इन्हीं में एक चिचड़ी ओरनीथोडोरसमोबाटा (Ornithodorousmoubata) जाति की है, जो अन्धी होती है, और मनुष्य का रक्त चूसती है। यह चिचड़ी प्रति बार पेट भर कर स्वरूप बदलती है। यह बात सिद्ध हो चुकी है कि यही चिचड़ी स्पीरोचेटाडट्टोनी (Spirochatae Duttoni) जाति के कीटाणुओं के प्रचार का कारण होती है, जो अणुवीक्षण यंत्र से दिखाई देने वाले कीटाणुओं के स्वरूप के प्रोटोज़ाआल कीटाणु होते हैं। ये कीटाणु मनुष्य के रक्त में रहते हैं और पुनरावर्तक कफ ज्वर का कारण सिद्ध होते हैं। एक विचित्र बात यह है कि चिचड़ी के भीतर से ये कीटाणु इस के अण्डों तक में पहुँच जाते हैं।

चिचड़ी की मध्यमायु एक बर्ष की होती है, यद्यपि इनमें से कुछ इससे अधिक काल तक भी जीवित रहती हैं और बहुत काल तक उपवास करती हैं।
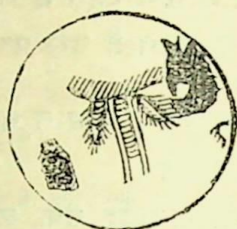
आरबी थोडोर्समोबाटा जाति की चिचड़ी प्रायः भूमि के भीतर अथवा झोंपड़ियों के फ़रशों की रेत वा भीतों में रहती है और दिन के समय चिचड़ी का छेद

करने वाला मुंह जिस में खड्गाकार हाई पोष्टम तथा आच्छादन के भीतर प्रविष्ट होने वाले नीचे के जबड़े तथा पेलस दिखाये गये हैं।

दराड़ों में छिपी रहती हैं। यह मध्य अफ़रीका में साधारणतः मिलती है। बहुत सी अन्य जातियां भी इस प्रकार की हैं और स्वभाव दृष्टि से प्रोरॅथोडोरस योबाटा से मिलती हैं। ये अफ़रीका दक्षिणी अमरीका तथा एशिया के बहुधा उष्ण देशों में होते हैं। इन चिचड़ियों में से जो मनुष्य शरीर पर मिलती हैं, कुछ नीचे लिखी जाती हैं।

लेप्टिस (Leptiss) जिस के शरीर पर बाल होते हैं और जो पच्छिमीय भारत द्वीपसमूह में साधारणतः पाई जाती है। कहते हैं, कि यह त्वचा के नीचे प्रविष्ट हो जाती है। अरगोसपर्सीकस Argospersicus जो ईरान में मिलती हैं, एक तो तीक्षण रक्त वर्ण की चिचड़ी होती है जिस पर धब्बे होते हैं। एलसीटोरेलियस (Alcetoralius) जो ग्वाटी माला में बांस की बल्लियों के भीतर मिलती है।

ढोरों में बहुत से घातक रोगों के विषय में यह बात सिद्ध हो चुकी है कि इन्हें फैलाने वाली चिचड़ियां ही होती हैं। इन में से कुछ वर्णन योग्य रोग निम्न लिखित हैं:—

पूर्वीय समुद्र तट का ज्वर-यह पशु रोग है और दक्षिणी अफ़रीका के कुछ भागों में इस से ९५ सैंकड़ा पशु मरते हैं। इस रोग का यथार्थ हेतु एक प्रकार का प्रोटोज़ोआल कीटाणु होते हैं जिन का नाम पीरोप्लाज्मा (Piroplosma) है। इन से लिम्फावी (कफयुक्त ग्लैंड बहुत सूज जाते हैं। इस रोग से एक से दूसरे जीव तक पहुंचाने

का कारण चिचड़ियां विशेष करके वह जे रहीपीसीफालस (Rhipi-caphalos) जाति की होती हैं।

टेक्सास को पशु का ज्वर अथवा रेडवाटर भी कहते हैं। यह एक प्रकार के पेरो प्लस्मा कीटाणु के द्वारा उत्पन्न होता है जिन्हें मेरगा रोपस जातिकी चिचाड़ियां फैलाती हैं।

ब्राज़ील की कुक्कटियों में एक रोग स्पैरो चेटा गेली फ़ार्म नामक कीटाणु से उत्पन्न होता है, जिन्हें अरगस मिनियाटस (Argus Miniatus) नाम की चिचाड़ियां फैलाती हैं।

इस में कुछ संदेह नहीं कि कीड़ों की भांति चिचाड़ियों की कुछ जातियां भी नितान्त हानि रहित हैं। वस्तुतः उष्ण देशों में इनकी यहांतक अधिकता है कि कदाचित् ही कोई पशु इन से बचा हुआ पाया जाता है, और कुछ जातियां विशेष २ जीवों से विशिष्ट होती हैं।

इन के अतिरिक्त कुछ और चिचड़ियां जो संसार के विविध भागों में वर्तमान पाई जाती हैं, निम्न लिखित हैं।

बोंट वा धब्बेदार टांगों वाली चिचड़ियां, काले धब्बे वाली चिचड़ियां की लोन स्टार, नीली और केस्टरबीन चिचिडियां जो सब की सब पशु के शरीर पर पाई जाती हैं, दक्षिणी अफ़रीका के कुत्तों की चिचड़ीयां जो एक जाति के पेरो अस्या कीटाणु कुत्तों तक पहुँचाती हैं, और गसरी प्लाक्सस जो कबूतरों में पाई जाती हैं, कारसविस्परटलेटनअस जो चिमगादड़ों से लगी रहती है, एमबोलिओ या हेबर टेम जो भेड़ों के सेंग हृदय में जल उत्पन्न करने वाले कीटाणु के पचार का हेतु होती हैं, और हयालोमा जो कछुओं में पाई जाती है॥

॥ इति ॥

अमृतधारा की सिल्वर जुबली

१० मार्च १६२६ से १६ मार्च १६२६ तक बड़े समारोह से मनाई गई थी

इस सिल्वर जुबली का अद्भुत वृत्तान्त जो सज्जन पूरा २ पढ़ना चाहें, एक कार्ड भेज कर बिना मूल्य मंगवा सकते हैं, संक्षिप्त तौर पर यहां भी लिख दिया जाता है।

१० मार्च १६२६ को प्रातः काल वेद पाठ तथा हवन हुआ और विद्यार्थियों आदि को खाना खिलाया गया। सायंकाल को प्रदर्शिनी और विद्युत चिकित्सा का उद्घाटन—

श्री राजा नरेन्द्रनाथ जी एम. ए. एम. एल. सी. भूतपूर्व कमिश्नर पंजाब, तथा प्रधान हिन्दु महा सभा ने किया।

इस उत्सव में सहस्रों उपस्थिति थी। पहले पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य ने प्रदर्शिनी के लाभ वर्णन किये और बतलाया, कि यह प्रदर्शिनी ७ दिन तक खुली रहेगी। आपने कहा कि विद्युत् चिकित्सा को भी जिसकी मशीनें विलायत से मैं लाया था आज से जारी कर दिया जाएगा। इसके **पश्चात् डाक्टर नन्दलाल जी बी. ए. एल. एल. डी.** बैरिस्टर ने एक संक्षिप्त भाषण में पंडित जी की वैद्यक योग्यता, उन की मानसिक उन्नति, धार्मिक भिज्ञता, उनके आचार और दान शीलता का वर्णन किया और कहा कि उन्होंने कई दर्जन पुस्तकें लिखकर और पत्र जारी करके देश और चिकित्सा की भारी सेवा की है और आज वह हम सब के धन्यवाद के पात्र हैं।

इसके पश्चात् मौलवी **महबूब आलम सम्पादक "पैसा अखबार"** ने प्रदर्शिनी की चाबी राजा साहिब के अर्पण की। आपने चाबी लेते हुये एक युक्तियुक्त भाषण में बतलाया कि वह समय गया, जब कि प्रत्येक विदेशी वस्तु अच्छी समझी जाती थी हमको स्वदेशी वस्तु ओं का सन्मान करना चाहिये। देशी चिकित्सा में बहुत गुण हैं। हां वर्तमान पदार्थ विद्या के अनुभवों को अपने भीतर स्थान देना चाहिये। वैद्यक चिकित्सा के साथ विद्यु त

चिकित्सा की सहायता लेना भारतवर्ष में पहिला उदाहरण है। इस के लिये पंडित जी धन्यवाद के पात्र हैं। इस के पश्चात् आपने प्रदर्शिनी और विद्युत् चिकित्सा विभाग को खोल दिया, और सहस्रों पुरुषों ने देखना अरंभ किया।

यह प्रदर्शिनी बराबर सात दिन खुली रही, और सहस्रों की संख्या में जनता प्रतिदिन देखने के लिये आती थी। अमृतधारा भवन बिजली के प्रकाश से खूब जगमगा रहा था। बिजली की अद्भुत पुतलियां और मशीनें जनता को अपनी ओर खैंचती रहती थीं। ४ बजे सायङ्काल से १० बजे रात्रि तक अमृतधारा भवन के सामने एक मेला लगा रहता था, बल्कि किसी समय तो रास्ता भी बंद हो जाता था। प्रत्येक मत और प्रत्येक व्यवसाय के स्त्री पुरुष, बालक वृद्ध लाभ उठा रहे थे। हर एक ने सराहा और पंडित जी के काम की प्रशंसा की।

११ मार्च को प्रातः अनाथों तथा दीनों को भोजन दिया गया और २ बजे से ४ बजे तक हकीमों और वैद्यों का सम्मेलन हुआ जिस में वैद्य सभा और अञ्जुमने अतिब्बा के सेक्रेटरियों ने पं०जी के कार्य और उन की वैद्यक सेवा की प्रशंसा की और यह निश्चय हुआ कि इस जुबली के उपलक्ष में वैद्यों और हकीमों की एक सम्मिलित समिति बनाई जावे जिस के प्रधान पं० जी और मंत्री कविराज हरनामदास बी० ए० नियत किए जावें। कान्फ्रेंस के पश्चात् सब वैद्यों तथा हकीमों को एक पार्टी दी गई।

१२ मार्च को ५ बजे से ९ बजे सायंकाल तक जुबली का दिन मनाया गया। लोग चार बजे से एकत्रित होने आरम्भ हो गए थे। आठ दस सहस्र स्त्री पुरुष इस उत्सव में सम्मिलित हुए। लोगों का तांता लग रहा था। हर एक पहिले स्थान लेने के लिए उत्सुक था। इस के प्रधान—

जनाब मसीहउल मुल्क हकीम अजमलखां साहिब शाही हकीम देहलवी थे। सब से प्रथम पं० जी ने अपने जीवन के मनोरंजक और शिक्षादायक वृत्तान्त सुनाए, जो कि सम्पूर्ण "जुबली वृत्तान्त में छापे गए हैं। इसके पश्चात्—

डाक्टर मियां सर मुहम्मद शफ़ी साहिब एम० ए० के० सी० ऐस० आई० ऐल० ऐल० डी० भूतपूर्व सदस्य शिक्षा विभाग

(गवर्नमेंट इंडिया) ने पं० साहिब को धन्यवाद दिया, और कहा कि अमृतधारा अपने गुणों के कारण कामयाब है, और मेरे यहां ऐसा कोई समय नहीं होता जबकि दो चार शीशियां मौजूद न रहती हों।

सर ख़ान बहादुर शेख़ अब्दुल क़ादिर साहिब बैरिस्टर भूतपूर्व वज़ीर पंजाब ने फ़रमाया, कि पं० साहिब ने साबित कर दिया है, कि देशी औषधियां विदेशी औषधियों को मात भी कर सकती हैं। **महाशय कृष्ण बी. ए. सम्पादक "प्रताप"** ने कहा कि पं०जी की उन्नति उनके शुभ गुणों के कारण से है। **आप जहां कमाते हैं देते भी हैं। आपने अपने पुत्र के विवाह पर एक बार ही ४० हज़ार रुपया दान कर दिया था।** उपदेशक विद्यालय को आजकल आप ४००) मासिक दे रहे हैं और कोई भी किसी शुभ कार्य के लिए उनके पास जावे, ख़ाली हाथ नहीं जाता।

डाक्टर गोकुलचन्द जी नारंग, एम. ए. मेम्बर पंजाब कौंसिल ने कहा कि परमात्मा की दी हुई योग्यता के साथ धैर्य्य और संगठन शक्ति भी हो तब ही सिद्धि प्राप्त हो सकती है। यह सब बातें पं० जी में मौजूद हैं। आप उन लाभकारी प्राणियों में से हैं, जिनकी मेघ, नदी अथवा वृक्षों से उपमा दी जा सकती है।

मौलवी गुलाम मुहीउद्दीन साहिब वकील क़सूरी ने आप के कार्य की प्रसंशा करते हुए फ़रमाया, कि इसके उपलक्ष में पं० साहिब को कोई ऐसा उपाय सोचना चाहिए, कि अनाथों को वैद्यक सहायता प्राप्त हो सके।

सरदार सरदूलसिंह कवीश्वर ने वर्णन किया, कि विजयी सदा पराजित जातियों की विद्या तथा शिल्प का सम्मान नहीं करते, पं० साहिब धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्हों ने देशी चिकित्सा का सम्मान बढ़ा कर मुकाबिला किया।

लाला दुनीचन्द साहिब बैरिस्टर ने घोषणा की कि मौलवी गुलाम मुहीउद्दीन साहिब की अपील से **पं० जी ने मुझे यह सूचना देने को कहा है, कि वह २० हज़ार रुपया**

दीनों तथा असहायों की वैद्यक सहायता के लिए जुदा करते हैं ।

उत्सव के **प्रधान जनाब मसीहुल मुलक** साहब ने जनता को धन्यवाद दिया और कहा, कि वह पंडित जी को १७, १८ वर्षों से जानते हैं । वह सचमुच परिश्रम धैर्य्य और सत्यता से कार्य्य करने वाले हैं । यदि ऐसे सब लोग मिलकर देश के लिये काम करें, तो स्वराज्य क्यों प्राप्त न हो । हिन्दू मुसलमान जैसे आज एकत्रित हुये हैं, उनको सदा मिलना चाहिये । हिन्दू मुसलिम झगड़ों से देश को बहुत हानि पहुंच रही है । उत्सव के पश्चात् तालियां और "अमृतधारा की जय" के शब्दों से पिंडाल गूंज रहा था * ।

एक अद्वितीय विज्ञापन ।

अमृतधारा के सहस्रों ऐसे विज्ञापन तैयार हो सकते हैं, जिन में शब्द भी अपनी ओर से न मिलन पड़े और एक पूरा विज्ञापन बन जावे, (क्योंकि ३६ हज़ार पुरुषों के प्रशंसा-पत्र मौजद हैं) । नीचे हम ने कुछ पत्रों के थोड़े २ शब्द छांट कर दरज कर दिये हैं । जिन महाशयों के ये शब्द हैं, उन के नाम कोष्टों में साथ २ छाप दिये हैं । आरम्भ से अन्त तक पढ़ जाइए आप को अमृतधारा का वर्णन मिल जायगा, और हमारा इस में एक भी शब्द नहीं ।

आप की आविष्कृत अमृतधारा की किसी जिह्वा से श्लाघा करूं, यह एक अद्वितीय औषधि है । इस ने वह २ चमत्कार दिखलाये हैं,

---

* विस्तृत विवरण जो कि बड़े मनोरञ्जक हैं "रिपोर्ट सिल्वर जुबली" में देखिये जो कि मुफ्त मिल सकती है ।

जो किसी दूसरी दवाई से असम्भव थे। (मियां शेर मुहम्मद चक नं० ४५ पत्तोकी) इसमें किंचित मात्र अत्युक्ति नहीं, कि अमृतधारा 'यथा नाम तथा गुण' है। निश्चित रूप में यह आबेहयात (अमृत) है, और जगत में कोई इस प्रकार की अद्भुत औषधि आज तक निर्माण नहीं हुई है। सचमुच भारतीय चिकित्सा पद्धति का एक चमत्कार है। भारतवासियों को इस बड़े आविष्कार का अभिमान करना चाहिए। (राजा नरेन्द्र चन्द्र बहादुर सी० एस० आई० आफ नादौन) मैं प्रसन्न हूं कि आपने इस दवाई को ईजाद करके जगत का बड़ा उपकार किया है (बा० त्रिवेनी सहाय डिप्टी कलैक्टर आगरा) और सब मनुष्यों को इस उत्तम आविष्कार से अपना ऋणी बना लिया है (पं० दीनदयालु शर्मा व्याख्यान वाचस्पति) सबको जनता के उपकारार्थ किए गए पुरुषार्थ के लिए आपका कृतज्ञ होना चाहिए (टिक्का बलदेवसिंह गुलेर रियासत) निश्चय ही अमृतधारा सब रोगों पर जादू का प्रभाव रखती है, और जितनी भी इसकी प्रशंसा की जावे थोड़ी है (कुंवर प्रद्युम्न सिंह बहादुर वज़ीर बीजा) अमृत-धारा में खुदा ने बड़ा प्रभाव दिया है। इस दवाई की कहां तक प्रसंशा करें (शेख़ महम्मद अयूब एण्ड सन्ज जनरल मर्चेण्ट सहा-रनपुर) क्योंकि यह जादू भरी दवाई है, और कई कठिन रोगों के रोगी अजीब तौर से इससे राजी हुए हैं। (मिस्टर टी ब्रैडशा लाल-बाग़ लखनऊ) वस्तुतः इसकी पूर्ण प्रशंसा हो ही नहीं सकती है। कोई दूसरी दवाई इसकी तुलना नहीं कर सकती, बल्कि पास ठहर नहीं सकती (मैडम ई० जानसन साहिबा चुनार) मैं नहीं कह सकता कि संसार में कोई और दवाई भी इतनी शीघ्र प्रभावशाली और निश्चय तौर पर लाभदायक हो सकती है (लाला मोहनलाल मतलब क्लर्क आफ कोर्ट सिशन जज लाहौर) निःसन्देह यह बहुत उपयोगी दवाई है। (श्री स्वामी सत्यानन्द जी राजोपदेशक) यह एक सचाई है कि अमृतधारा अक्सीरे-आज़म है। (हकीम फ़ीरोज़दीन मुंशी फ़ाजिल लाहौर) सच कहता हूं, कि अमृतधारा में आबेहयात से कहीं बढ़कर गुण हैं। तीर व तलवार का वार खाली जा सकता है, मगर अमृतधारा का रोग पर वार ख़ाली नहीं जा सकता है। यह अपने गुणों के कारण सब जगत में प्रसिद्ध हो रही है। (बाबू पी.एन. जी मालिक नैशनल प्रेस वर्क्स नाभा) मैंने जो जो रोगी आया उसको अमृतधारा देदी,

और सब ही राज़ी होकर खुशी से हंसते हुए वापस हुए। (लाला राजाराम सब डिवीज़िनल अफ़ीसर अकलेरा) रोग नया हो या पुराना कोई भी हो अमृतधारा दे दो, यह आराम दे देगी। (मिस्टर एन.आर. आरिस्टन बदायूं) मेरा पहिले ख्याल था, कि एक दवाई इतने रोगों को कैसे उपयोगी हो सकती है, परन्तु जब से यह अमृतधारा इस्ते-माल करना शुरू किया है, मुझे इस बात का पूरा विश्वास होगया है (ला० नरायनदास इंज़ीनियर) अमृतधारा में बहुत से गुण हैं इसकी पूरी प्रशंसा करनी तो असम्भव है। इससे वैद्यों और डाक्टरों की आवश्यकता नहीं रहती। (शेख मुहम्मद जहूर-उल हक भद्रक) बहुत से औषधियों के बक्स खरीदने की आवश्यकता ही क्या है, जब कि अकेली अमृतधारा इतने रोगों को दूर कर सकती है (राय दीवानचन्द एम. ए. सेशन जज) बड़े परिवार वाले घर में सैकड़ों औषधियां रखने की बजाय अमृतधारा को मौजूद रखना काफी है। (मियां मुहम्मदअली रईस करंजा ज़िला अकोला) हर घर में चन्द शीशियां अमृतधारा ज़रूर रखनी चाहिए अगर कोई घर खाली रहे तो वह अभागा है। (मुहम्मद खुरशीद उद्दीन फ़ारुक़ी) अमृतधारा सचमुच अमृत की तरह गुणकारी है। इसकी जितनी तारीफ़ की जाए थोड़ी है। गत तीन वर्षों से मैं जंगल में हूं, और मेरी अकेली और सच्ची मददगार केवल अमृतधारा है। (राय बहादुर किशनसिंह झील टोला) इस दवा ने परदेश में भरोसा और आश्वासन देने में माता पिता का सा काम किया है। मैं इसकी दिलोजान से उन्नति चाहता हूं। (राव चरणदत्त अलमोड़ा) ऐसी प्रभावशाली और उत्तम औषधि की एक शीशी प्रत्येक मनुष्य को अपने पास रखनी चाहिए। (मिस्टर जे. लूई साहब गवर्नमेंट रेलवे आफिस लाहौर) प्रत्येक अमीर ग़रीब के घर में इस दवाई को रखना चाहिए। अमीरों को चाहिए कि वह अधिक मंगवा कर ग़रीबों को मुफ्त बांटें। (सरदार देवेन्द्रसिंह रईस पट्टी) मेरे पास पूरे शब्द नहीं कि मैं हर एक मनुष्य को विश्वास दिला सकूं, कि अमृतधारा प्रत्येक स्त्री पुरुष को अपने पास रखनी आवश्यक है । (लाला हरसुखराय मैनेजर पंजाब नैशनल बैंक लाहौर) अमृतधारा दोषों से बिलकुल खाली है, और इस से अधिक प्रशंसा की असल तौर पर हकदार है जो अब तक भिन्न

भिन्न प्रान्तों के लोगों ने की है। सचमुच अपने लाभ के ख्याल से यह आप अपनी मिसाल है। (हकीम नासरुद्दीन अहमद खां सुपुत्र शफाउल मुल्क देहली) अगर सब विज्ञापन देने वाले हकीम आप की अमृतधारा जैसी उपयोगी दवाइयों के विज्ञापन देने लग जावें तो लोगों का विश्वास विज्ञापनों में होजावे। (सरदार मुजीब उर्रहमान आनरेरी मजिस्ट्रेट मुजीब नगर) अमृतधारा यक़ीनी तौर पर अमृत सरोवर है, और इस के गुणों के ख़याल से इस का मूल्य २॥) कुछ भी नहीं है। (बाबू जगन्नाथ प्रसाद भानु कवि ई० ए० सी० विलास पुर) मेरा तो ख़्याल है, कि अमृतधारा के प्रत्येक विन्दु का मूल्य इस की नमूना की शीशी के मूल्य ॥) से अधिक है। (मियां मुहम्मद यासीनखां मुन्सिफ सराय भनौली) ईश्वर से प्रार्थना है कि इस का प्रचार घर घर होजावे ताकि लोग कष्ट से बच सकें। प्रभु आप के कार्यालय को दिन दुगुनी रात चौगुनी उन्नति दे और सदा आप का नाम चांद की तरह रौशन रहे। (ठाकुर वीरसिंह हाजर बाशी मुसाहिब महाराजा साहब बहादुर जम्मू) जो लोग अमृतधारा जैसी औषधि तैयार करने के दावे करते हैं वह असल में जनता को धोखा देना चाहते हैं मगर वह इस में कृतकार्य न हो सकेंगे। प्रत्येक पुरुष जानता है कि वह आप की अपनी आविष्कार है, और किसी पुस्तक में इसका प्रयोग नहीं मिल सकता है। मैं अपना कर्तव्य समझता हूं कि आपकी औषधियां विशेष कर अमृतधारा की प्रसिद्ध करूं। मैं जनता के उपकार के लिए ही अपने मित्रों को यह विश्वास दिलाने का सदा यत्न करूंगा, कि अमृतधारा की नक़लें किसी काम की नहीं हैं, और इनको नक़्क़ालों के फन्दे में न फंसना चाहिए। (पं० श्रीधर कौल बी. ए. श्रीनगर) मैंने सुपरिण्टेण्डेण्ट बहादुर की मेम को जब कि वह पेट दर्द से तड़प रही थी, और सिविल सर्जन इलाज कर चुका था, अमृतधारा दी, और पन्द्रह मिनट में बिलकुल आराम हुआ। मेम साहिबा ने मुझे दस रुपया इनाम दिये और पूछा कि यह दवाई कहां से मिलती है? मैंने बताया कि लाहौर में जनाब पं० **ठाकुरदत्त शर्मा** वैद्य की यह दवाई है (अज़ीज़खां गनूज मुल्क बरार)

उन रोगों के नाम जिनको

अमृतधारा दूर करती है ।

सब प्रकार का शिर दर्द, श्वास, कास, पार्श्वशूल, (निमोनिया) नज़ला, ज़ुकाम, विषूचिका, मन्दाग्नि, अरुचि, उदर रोग, गुड़गुड़ाहट, मरोड़, परिणामशूल, अतिसार, वमन, मृगी, दन्त पीड़ा, वा दाढ़-पीड़ा, दांतों से रक्त जाना वा पानी लगना, कर्ण पीड़ा, कर्ण घाव, कर्ण खाज, छींक, नेत्र पीड़ा, फोड़ा, फुंसी, सब प्रकार के घाव, दाद, चम्बल, भिड़, बिच्छू, सर्प का डंक, बावले कुत्ते का विष, गले में दर्द, गला बैठना, मुखशोथ, सर्व प्रकार के ज्वर, मूत्र-कृच्छ्र, सन्निपात, उपदंश, गिलटियां, सन्धिवात, सर्व प्रकार का शोथ, आन्तरिक व बाह्य पीड़ायें, चोट से दर्द, बवासीर, प्लेग, रक्त वमन, प्रसूत, हृदय रोग, कामला, वायु गोला, आर्तव सम्ब-न्धी सर्व रोग, कण्ठमाला, गुदभ्रंस, डब्बा रोग, बच्चों का दूध न पीना, कम्परोग, लक़वा, अर्द्धांगवात, घ्राणनाश, नकसीर, जिह्वा शोथ, मुख में फुंसियां, मुख का पकना, ओष्ठ शोथ, ओष्ठ फुंसी, दन्तकृमि, मसूढ़ शोथ, गले पड़ना, स्वरभंग, स्तन शोथ, स्तन फोड़ा, आमवात, मतली, यकृत पीड़ा, जलोदर, पांडु रोग, आमा-तिसार, उदर कृमि, भगन्दर, वृकद्वय पीड़ा, मूत्राशय पीड़ा, कटि पीड़ा, घुटने का दर्द, पिण्डुली का फूलना, नासूर, सर्व प्रकार की खाज, छपाकी, बहु स्वेद, अग्नि से जलना, इत्यादि इत्यादि दूर होते हैं। पशु पक्षियों के सर्व रोग भी दूर करती है।

कीमत बड़ी शीशी २॥) रु० अर्द्ध शीशी १।) नमूना ॥) है

पत्र व्यवहार व तार का पता—

अमृतधारा लाहौर

दफ्तर का पता—मैनेजर अमृतधारा औषधालय, अमृतधारा भवन, अमृतधारा रोड, अमृतधारा

टेलीफ़ून नं० २००८ **पोस्ट आफिस, लाहौर।**

आगत पत्र।

अब हम अमृतधारा की प्रशंसा में आये ३६ हज़ार पत्रों में से कुछ पत्र नीचे दरज करते हैं, और पाठकों से प्रार्थना करते हैं, कि वह अवश्य इनको पढ़ें, और ऐसे आविष्कार की दाद दें। अधिक प्रशंसा पत्र देखने हों, तो "अमृत" पुस्तक मुफ्त मंगवायें। इन प्रशंसा पत्रों से मालूम हो जायगा, कि अमृतधारा न केवल मनुष्यों के प्रायः सब रोगों का हुक्मी इलाज है, बल्कि पशु पक्षी आदि के रोगों को भी हितकर है। कठिन रोग जैसे प्लेग, इनफ्लयुआ नमोनिया, क्षय, सांपका विष, विषमज्वर, विशूचिका, हिस्टिरिया, शूल, उपदंश, गठिया, गौट और कई अज्ञात रोगों में भी अद्धितीय प्रमाणित हुई है। साधारण रोगों की तो क्या बात है अकस्मात् होने वाली घटनाओं तथा रोगों जैसे चोट से रक्त जाना, आग या गरम पानी या तेजाब आदि से किसी भाग का दग्ध हो जाना, सांप, बिच्छू, भिड़, मच्छर, बावला कुत्ता आदि का काट खाना, शिर पीड़ा, कर्ण पीड़ा, दरद गुरदा, आमाशय का दरद, दन्त पीड़ा, वमन, विशूचिका, अतिसार, मरोड़, पीनस, नज़ला, लू लगना, मूर्छा, किसी विषैली वस्तु का खाया जाना आदि, को अचानक ही खाने अथवा लगाने से दूर करती है। तीव्र कीटाणु नाशक है और छूतदार रोगों से बचने के लिये इसका आंतरिक वा वाह्यिक प्रयोग अत्यन्त सन्तोष जनक है। पुराने रोगों में भी यह जादू का प्रभाव रखती है। यात्रा में इससे बढ़कर कोई सहायक नहीं है। इस का योग दोष रहित है, यदि किसी रोगी को किसी कारणवश लाभ न करेगी, तो हानि भी न पहुँचायेगी। इसकी इतनी प्रसिद्धि देखककर लोग नक़लें भी करने लग गये हैं। पाठकों को सावधान रहना चाहिये। धनी, निर्धन राजे महाराजे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, ब्रह्मो, सिख, आर्य, देव समाजी, राधा स्वामी, देशी, विदेशी, सब इसकी प्रशंसा करते हैं, और सब की यह सम्मति है कि यह बहुत कम, [illegible]

से बचाती है । इस लिये इसको प्रत्येक मनुष्य को सदा पास रखना चाहिये । नीचे लिखे थोड़े से प्रशंसा पत्र अवश्य पढ़िये।

मख़ौल उड़ाया करता था

ला० नारायण दास साहिब चडा बी०ए०सी०आई० ई० लिखते हैं:—"लगभग दो वर्ष हुए होंगे कि मुझे पहिले ही पहल आपकी निर्म्मित अमृतधारा सेवन करने का अवसर मिला । इस २ साल के अर्से में "अमृतधारा" की शीशी हमेशा मेरे पास मौजूद रहती रही । मैं पहिले समाचार पत्रों में इश्तिहारी औषधियों पर जो दुनिया भर के सर्व रोगों को दूर करने का दावा रखती हैं, मखौल उड़ाया करता था, परन्तु अमृतधारा का जो थोड़ा बहुत तजरुबा मैंने किया है, उस से यह प्रमाणित हुआ है कि एक ही दवाई एक से अधिक विभिन्न रोगों पर हितकर हो सकती है । आप इसको खूब जोर से प्रकाशित करें, ताकि लोगों को जितना अब लाभ पहुंचा है, उससे भी अधिक पहुंचे" ।

पाकिट केस व्यर्थ हैं ।

राय दीवान चन्द साहिब एम०ए०एल एल०बी० सेशन जज लिखते हैं:—आज कल पाकिट केसों के बाबत विज्ञापन निकल रहे हैं । मेरी राय में बहुत सी औषधियों और पाकिट केसों को ख़रीदना व्यर्थ है । अमृतधारा अकेली इस प्रकार की औषधि है जो कि बहुत से रोगों में अति शीघ्र लाभ देती है और जिस के सामने कोई और औषधि दम नहीं मार सकती । मेरी राय में यह औषधि वास्तव में अमृत है और इस के द्रव्य पूर्णतया हानि रहित हैं ।

रोग निदान की आवश्यकता नहीं ।

बाबू चन्द्र प्रकाश साहिब रियासत साहनपुर जिला बिजनौर से लिखते हैं:—"आजकल जहां कहीं गिलटी या दर्द मालूम हुई प्लेगका भ्रम होजाता है । अब तक ऐसे रोगियों पर

बरती, बड़ा फ़ायदा हुआ। "अमृतधारा,, में विशेष गुण है कि गर्दन के पास गिलटी हो, या रान के जोड़ में, बद्ध हो या चोट, या दूसरी कोई फुन्सी प्लेग की आकृत वाली हो, सब में विचित्र लाभ देती है। किसी अवस्था में निदान की बड़ी आवश्यकता नहीं हुई। ऐसा प्रभाव दुनिया की और किसी दवा विशेषतः इशितहारी दवा में आज तक नहीं देखागया। सत्य यह है, कि यह सब औषधियों की शाहन-शाह और यथा नाम तथा गुण है"।

रोग का पता न था।

मीर उसमान अलीहुसैन सज्जादा नशीन मौज़ा नसरुल्लाबाद लिखते हैंः—"सच मुच अमृतधारा हर रोग का हुक्मी इलाज है। आधासीसी, दर्द सिर, आंख, गठिया, बद्ध खांसी, सब प्रकार के बाह्यिक व आन्तरिक रोगों पर मैंने आज़माया जादू का प्रभाव पाया। इसके अतिरिक्त मेरी नाक में मांस बढ़ गया, जिस से सांस रुक कर बड़ा कष्ट रहता था। रूई के फाया से लगाया, ईश्वर की कृपा से बहुत सा मांस गल गया"।

आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

लाला राम लभाया साहिब ठेकेदार गूजरांवाला से लिखते हैंः—"जब से मुझ को अमृत धारा का पता मिला मैंने न कोई और औषधि सेवन की है न मुझे कोई हकीम या डाक्टर के बुलाने की आवश्यकता प्रतीत हुई है। जब कभी घर में कोई बीमार होता है अमृत धारा ही देता हूँ। मेरी राय में कोई व्यक्ति भी अमृतधारा के बिना नहीं रहना चाहिये"।

हकीम बन गया हूं।

जनाब अमजद अली साहिब ज़िलादार गढ़ौर ज़िला मिरज़ापुर लिखते हैंः—मेरे पास अमृतधारा हमेशा मौजूद रहती है। चूंकि मेरा अधिकतर निवास ग्रामों में होता है, इस लिये सैंकड़ों रोगी मेरे पास बिच्छू के काटे हुये आये, जिनकी

आंखों से बराबर आंसू जारी थे, मगर जिस समय मैंने अमृतधारा लगाया, शीघ्र आराम हुआ और हंसते हुये वापस गये। इस के अतिरिक्त शिर दर्द के जो रोगी मेरे पास आये उनको बराबर आराम हुआ। मलेरिया बुखार के अक्सर रोगी मेरे पास आये, पानीमें डालकर ३ बूंद अमृतधारा दिया, आराम होगया। जितनी प्रशंसा अमृतधारा की कीजाये, वह थोड़ी है, कोई हकीम नहीं हूं मगर जब से आपके कारखाने से अमृतधारा मंगाई है, ग्रामों में लोगों ने मुझ को हकीम मशहूर कर दिया है"।

कोई घर ख़ाली न रहना चाहिये।

श्रीमान् अमृतलाल साहिब सुपरिन्टेन्डेण्ट पुलिस सिटी मजिस्ट्रट व जज अदालत खफ़ीफा राज्य उदयपुर मेवाड़ लिखते हैं किः—मैं अपने दो साल के तजुर्बे के बाद पबलिक को इस बात का निश्चय दिलाता हूं कि "अमृतधारा" में वे सब लाभ निःसंदेह वर्तमान हैं जिन को कि देशोपकारक पंडित जी ने अपने विज्ञापन में प्रकाशित किया है। सचमुच कोई गृहस्थ और बाल बच्चों वाला घर ऐसा नहीं होना चाहिये, कि जिस में "अमृतधारा" हर समय मौजूद न रहे। समय पर यह सब प्रकार के रोगों से रक्षा करती है। यदि मैं अपने तजुर्बों को प्रकट करूं तो एक भारी ग्रन्थ होजाय। इसलिये इतना पर्य्याप्त है, कि हमको इस विश्वास के साथ एक शीशी "अमृतधारा" की अपने घर में मौजूद रखनी चाहिये, कि मानो एक चतुर वैद्य और डाक्टर घर में मौजूद है।

नक़ल नक़ल है और असल असल है।

सैयद गुलाम सफ़दर पुरी मुल्क उड़ीसा लिखते हैंः—

"निस्सन्देह आप की औषधि अमृतधारा ने वह प्रसिद्धि प्राप्त की है कि अन्य औषधियों को स्यात ही मिले। यद्यपि इस की नक़ले की गई हैं परन्तु असल असल है और नक़ल नक़ल है।

अमृतधारा असली नेवह काम कर दिखाया है कि जहां नक़ली पूरी शीशी भी ख़त्म हो जाय फिर भी कुछ प्रभाव नहीं। अतः

आप से इस समय एक शीशी अमृतधारा रियायती मूल्य पर मांगता हूं।

खेद है वैसी तैयार न हो सकी।

आजाद खां स्टोर कीपर मिलिटरी वर्क्स एबटाबाद से लिखते हैं:—"आप की भेजी हुई शीशी अमृतधारा अब खत्म होने पर है। कृपया एक शीशी और भेजें क्योंकि इस पर मैं आसक्त हूं और जब तक यह शीशी मेरी पाकिट में न हो चैन नहीं आता। अमृतधारा मैं स्वयं भी तैयार कर सकता हूं परन्तु जैसी अमृतधारा आप की है वैसी तैयार नहीं हो सकती। खुदा जाने आप कौन कौन से द्रव्य इस में डालते हैं"।

मुकाबले को नहीं पहुंचता।

जगमोहनलाल कायस्थ भगवन्तपुर ज़िला कानपूर से लिखते हैं:—"आप की अमृतधारा सचमुच सब से अधिक प्रभावशाली और अच्छी औषधि है। मैं आप का बड़ा कृतज्ञ हूं। सत अजवायत सत कपूर इत्यादि से जो एक प्रकार का अर्क़ बन जाता है वह आप की अमृतधारा के मुक़ाबले में नहीं पहुंचता"।

कुत्ता तोता इत्यादि।

"अब हाल में जो अनुभव मुझे अमृतधारा से हुआ है उसका वर्णन करता हूं। एक कुत्ता जिस की आंखें क़रीब २ ऐसी धुंधली थीं कि अच्छी तरह से देख नहीं सकता था केवल शब्द से इधर उधर जाता था आंखों में अमृतधारा तीन चार बार लगाने से अच्छी होगईं। आंखें पहिले देखने में श्वेत थीं। इसके पश्चात श्वेतता दूर होने पर क़रीब क़रीब असली हालत पर आ गईं। यह कुत्ता अभी छोटा बच्चा है।

मेरे पास एक तोता छोटी किस्म का है।

"उस के दाएं पंख में एक प्रकार की खाज थी, उस के कारण से उसने अपने सारे बाल नोच दिये। 'अमृतधारा' लगाने

से बाल नोचना बन्द हो गया। अब उसके पंख जम रहे हैं, और अच्छी अवस्था में आ रहा है। आशा है कि किंचित् दिनों के लगाने से पूर्णतया अच्छा हो जावेगा और पंखादि उग आवेंगे"।

एक कुत्ते न दो रोज़ कुछ न खाया था।

"बड़ी चिन्ता थी कि इस को क्या दिया जावे। निदान मन में आई कि 'अमृतधारा, देनी चाहिये अतः शक्कर में मिला कर जबरदस्ती उसके मुख में डाली गई एक घंटा पीछे थोड़े चावल और रोटी का टुकड़ा दिया तो थोड़ा सा खाया। दूसरी बार अमृत धारा, देने से राजी हो गया। फिर अब तक बीमार नहीं हुआ। मेरी ६ शीशीयां ६ मास में समाप्त हुई हैं। १२ शीशियों का आर्डर अब दिया है। काश कि 'अमृतधारा' का मूल्य अल्प होता जिससे दिल खोल कर पशुओं की सहायता की जाती। आशा है इस लेख को आप देशोपकारकमें सर्व साधारण के लाभार्थ प्रकाशित कर देंगे"।

लेखक—राधाकिशनसिंह इन्स्पेक्टर कन्टोन्मेन्ट सरवे सेक्शन नं० २ सरवे आफ़ इण्डिया मकान नं० ५ रसूलपुर छावनी

अन्य प्रदेशों में

श्रीमान् महाशय शिवव्रत लाल साहिब एम०ए०

सम्पादक "साधू मार्त्तण्डादि" लिखते हैं:— श्रीमान् पण्डित जी! आपका पत्र मिला अमृतधारा के विषय में मेरी सम्मति चाहते हैं। मैं तो यों ही उसको प्रभावशाली मानता हूं, इस कारण से नहीं कि आपके पास १५ सहस्र प्रशंसापत्र वर्त्तमान हैं, वरन् इस कारण से कि मैंने तजरुबे से इसको बहुत गुणकारी पाया है। मैं इसकी शीशी सदैव चीन, जापान, अमेरिका आदिकी यात्रा में साथ रखता था, और जहां कहीं सम्भव हुआ, मित्रों और मिलने वालों को इसके मंगाने की सम्मति दी। जापान और सानफ्रांसिस्को में मैंने अपने मैनेजर कन्हैयालाल साहिब से अमृतधारा की शीशियां मंगाकर लोगों में बांटीं। मेरे विचार में जहां वैद्य और डाक्टर न हों वहां अमृतधारा का पास रखना अत्यन्त हितकर है। इससे अधिक मैं और क्या सम्मति दूं"।

विशेष सूचना ।

अमृतधारा शब्द हमारा है। कोई दुकानदार अगर धोके से इस नाम से कोई और दवाई देते हों, तो कृपा करके इस की सूचना हम को दिया करें। कार्य्यालय अमृतधारा लाखों रुपया के विशाल भवन में स्थापित है। इस के लिये विशेष डाकखाना अमृतधारा डाकखाना के नाम से खुला हुआ है। साथही की सड़क का नाम अमृतधारा सड़क है। अमृतधारा भवन के एक भागका प्रवेश संस्कार सर प्रतूलचन्द्र चैटरजी चीफजज हाईकोर्ट पंजाब ने और दूसरे भागका एफ० डवल्यू० कन्वे साहिब डिप्टी कमिश्नर लाहौर ने किया था। लाहौर में आने वाले महाशय मैनेजर की आज्ञा से कर्य्यालय को देख सकते हैं।

मैनेजर

अमृतधारा के पांच मिश्रण।

सुविधा के वास्ते निम्न लिखित पांच औषधियां अमृतधारा से तैयार करके रखी जाती हैं।

(१) अमृतधारा साबुन ।

इस साबुन में जो गुण हैं, वह किसी और में नहीं। यह साबुन चर्मज रोग दाद, चम्बल, फोड़ा, फुन्सी, खाज, पित्ती, कील, छाइयां आदि को दूर करता है, त्वचा को कोमल व सुन्दर बनाता है, और डिसइन्फ़ैक्टैण्ट भी है, रोगियों को देखने के पश्चात् इस से हाथ साफ़ करने से रोग कीटाणु नष्ट होते हैं, और रोग का भय नहीं होता। जनता ने इसे बहुत पसन्द किया है। मूल्य प्रति बक्स ३ टिकिया ॥।=) प्रति टिकिया ।-)

(२) अमृतधारा मरहम ।

बहुत से पुराने चर्मज रोगों के दूर करने वाली औषधियों को अपनी प्रसिद्ध अमृतधारा के साथ मिलाने से तैयार की गई है।

अमृतधारा मरहम में कोई पाशविक चार्बी शामिल नहीं है। समस्त चर्म रोगों की अद्वितीय औषधि है। सब प्रकार के घाव, चोट रगड़, फुन्सी, दद्रु, चम्बल, एगज़ीमा खाज, छपाकी, छाले, हाथ पांव का फटना, उपदंश के घाव, अर्श मस्से, मच्छर भिड़ आदि के डंक, आग उष्ण जल व तेज़ाब आदि से जलना सब इस से दूर होजाते हैं। बड़े से बड़े घाव इतनी जल्दी भरने शुरू होजाते हैं, कि बड़े बड़े डाक्टर चकित रहते हैं। मूल्य १) प्रति डिबिया।

(३) अमृतधारा बाम।

इस में अमृतधारा के साथ ऐसी चीज़ें मिलाई गई हैं जो कि चर्म को कोमल करने और बादी बलग़म दूर करने में उत्तम हैं। इस की ऐसी शकल है जैसी कि वैसलीन की होती है। बादी बलग़म की पीड़ाओं जैसे गठिया इत्यादि के लिये अनुपम औषधि है। चर्म फटने के लिये गुणकारी हैं। शरीर में किसी स्थान पर पेशियों या नाड़ियों की पीड़ा हो उस को मलें। पौडर की भांति भी सेवन कर सकते हैं। मूल्य प्रति शीशी १)

(४) अमृतधारा लोज़ेंजिज़

(अमृतधारा की मीठी टिकियां)

विलायत से पेपमेंटादि की मिष्ट टिकियां विक्रयार्थ भारत-वर्ष में आती हैं, हम ने अमृतधारा की टिकियां तैयार की हैं। इन के चूसने से अमृतधारा का कुछ लाभ होने के साथ २ दन्त रोग, कफज रोग, कण्ठ खाज, गले पड़ना, कासादि को लाभ होता है। बालकों को विदेशी टिकियां और गोलियां आदि खाने के बदले इन को अपने पास रखना चाहिये। मूल्य १०० टिकिया ।) चार आने।

(५) अमृतधारा लोशन

मुख और गले के सम्पूर्ण नए पुराने रोगों के लिये यह लोशन संसार भर में अनुपम है। रोग कृमि नाशक गरारे करने के लिये हैज़ा प्लेग एन्फ्लूएंज़ा मलेरिया आदि महामारियों के दिनों में अमूल्य वस्तु है। मूल्य १)

अमृतधारा औषधालय की कुछ विचित्र औषधियां—
जिन्होंने संसार को आश्चर्य में डाल दिया है।

मीठा फल—यह विचित्र संसार को अचम्भे में डालने वाली औषधि है। जब गर्भ हो जावे तो दो मास के पश्चात् तीसरे मास ३ गोली दूध से खिलाई जाती हैं। पुत्र ही उत्पन्न होता है। मूल्य १०) लड़का न हो तो मूल्य वापिस करने की शर्त है।

फूलो फलो—यह सूखिया मसान की विचित्र औषधि है, इसको केवल वटि पर मला जाता है, और वहां से महीन २ कृमि निकलेत हैं, वही रोग का कारण होते हैं। मूल्य १)

तृतीयक ज्वर तन्त्र—इस औषधि को ज्वर चढ़ने से पहले उंगली पर वांध देने से ज्वर नहीं चढ़ता। मू० ॥)

दरद शिकन—इसकी एक ही पुड़िया के सेवन से चाहे किसी प्रकार की मांस व पठों की पीड़ा हो, जाती रहती है। शिर पीड़ा, जोड़ों की पीड़ा, कटि पीड़ा, गुल्फ, रान या किसी जगह की पीड़ा हो, १५ मिनट में आराम। पुरानी पीड़ा हो तो कुछ दिन सेवन करनी चाहिए। मूल्य १) नमूना।)

बला दूर (अफीम निवारक)—इन गोलियों के खाने से अफ़ीम छूट जाती है। सैकड़ों मनुष्य इससे अफ़ीम छोड़ चुके हैं। मूल्य ६० गोली १॥)

सिपचाच—यह विचित्र नाम एक अकसीर दवाई का है जो कि बड़े कठिन रोगों में रसायन का काम करती है। शरीर में नाड़ी व्रण इत्यादि हो बन्द न होता हो लगाने की औषधि रोग़न मसीहा इत्यादि के साथ इसको खाने को दिया जाता है। शीघ्र लाभ होता है गरमी (अतिशक) का माद्दा जब शरीर से निकलता न हो तो ईश्वर कृपा से लाभ होता है। आतिशक को भी गुणकारी है कष्ट को लाभ-दायक है कफज कास और श्वास को दूर करती है बुढ़ापे के गिरे हुये शरीर को उठाती है। वृष्य भी है। जिनको प्रतिश्याय आदि का कष्ट रहता हो या जो वात रोगों से पीड़ित हैं उनके लिय नियामत है। मूल्य ६० गोला २) आधी ३० गोली १)

रोगन मसीहा—नाड़ीव्रण (नासूर) तथा भगन्दर को दूर

करता है। इसके लगाने से प्रथम सब पीब निकल कर भीतर से व्रण भरना आरम्भ होता है। मूल्य १ औंस ३), ४ डराम १॥) नमूना १ डराम ।-)

ज्वरार्क—मलेरिया, जूड़ी या मौसमी ज्वर किसी प्रकार का हो तीन दिन के भीतर २ जाता रहता है। मूल्य ॥) शीशी।

ज्वर नाशक—ज्वर नामकी शत्रु है। प्रायः हकीम इसको अपने पास रखते हैं और इसके बल पर प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं। वृद्ध बालक युवा. स्त्री पुरुष किसी प्रकार के ज्वर यहां तक कि प्लेग तक के ज्वर ग्रस्त हो आधी सारी या चौथाई गोली आयु अनुसार दोष तथा प्रकृति को देख कर देदो। दो चार दिन में अच्छा हो जायगा। रियासत जम्मूं के एक शाही हकीम ने इसकी बड़ी प्रशंसा की है और योग निर्मालए करने वाले को सैकड़ों आशीषें दी हैं। मूल्य २६ गोली १) ८ गोली ॥)

अक्सीर बदन—गले व छाती के रोग, कास, श्वास, गले पड़ना आदि के लिए हितकर है। जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा की खांसी में, पीप या रक्त जाने को पूर्ण गुण करती है। मूल्य फी शीशी १॥)

अमृत गोलियां—कफज कास श्वास, पेट दर्द, शीत ज्वर, नेत्र पीड़ा, नेत्ररोग, सब प्रकार का विष, ज्वर, सन्निपात, दन्तरोग, कोष्टवद्धता, सर्पदंश, बिच्छूदंश, भिड़डंक, उदर कृमि, मूत्रबंद्ध, आमाशय की निर्बलता, संग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, सन्धिवात, उपदंश, मुखगन्ध, शिरपीड़ा, कामला, जलोदर, धातुक्षीणता, मृगी, नासूर, अतिसार, मरोड़, कर्णपीड़ा, दन्तपीड़ा, आर्तवबद्धता, गुदभ्रंश, शीतदोष, नाभिपीड़ा, अश्मरी, छीव, प्रतिश्याय, मूत्रातिसार, बालकों का डब्बारोग, इत्यादि २० रोग दूर होते हैं। मूल्य ६० गोली १) नमूना =)

ज्वरारि अभ्रक—यह गोलियां विषम ज्वर के वास्ते अनुपम व अद्वितीय है। पुराना ज्वर चढ़ता उतरता हो, प्रायः पहिले दिन छोड़ देता है। मूल्य १६ गोली १), ८ गोली ॥)

गन्धार रस—प्रायः एक ही मात्रा से अतिसार मरोड़ादि को आराम आता है। विशूचिका के वमन विरेचन को भी आराम होता

है। अतिसार व मरोड़के वास्ते ऐसी हितकर अन्य औषधि न होगी।
मूल्य १) रुपया नमूना =)

दत्त नस्वार—इससे शिर वेदना, आधा शीशी, दाढ़ दर्द, कर्णपीड़ा, नेत्रपीड़ा, प्रतिश्याय दूर होते हैं। मृगी सन्निपात को हितकर है। मूल्य १) तोला, नमूना ।)

सूर्य घृत—इसको शरीर पर मलने से सब प्रकार की खाज तर व खुश्क दूर होती है। फोड़ा फुन्सी जिनको कई प्रकार के निकलते रहते हैं, उनके शरीर भी सर्वथा स्वच्छ हो जाते हैं। मूल्य २ औंस १), नमूना ४ डराम ।)

ऐराटी मेद—मोटापे की औषधि है। इस औषधि से प्रति मास ४-५ सेर और कभी १० सेर तक भार कम हो सकता है। मूल्य फी शीशी खुराक १ मास ४), खुराक १५ दिन २)

प्राणदाता—यों तो अमृतधारा भी विशूचिका के वास्ते अमृत है तथापि ऐसे भयंकर रोग में सहायतार्थ अन्य औषधियां भी हमेशा तय्यार रखनी चाहिए। यह हमारी अनुभूत औषधि है, और ५ घण्टे के भीतर ही इससे प्रायः आराम आ जाता है। मूल्य १५ गोली १) रुपया।

अञ्जन, मञ्जन, पौडर तैल इत्यादि

बाग़ फूल तैल—बालों के तैल जो आज कल तैयार होने लगे हैं समझदार सेवन करने वाले जानते हैं कि इनमें आम अङ्गरेज़ी सफ़ेद तैल (साफ़ किया मिट्टी का तैल) में केवल रंग और सुगन्धि देकर बनाये जाते हैं। रंग और सुगन्धि में आपने बहुत तैल देखे होंगे मगर बाग़ फूल तैल बालों के लिये बहुत गुणकारी है। उनको नरम व कोमल करता है स्याही को स्थिर रखता है। नज़ला जुकाम इत्यादि की अधिकता को रोकता है। सुगन्धि इसकी भीनी २ मनो-रंजक और देर तक रहने वाली है। संक्षिप्त में इसके भीतर वह सारे गुण वर्तमान हैं जो एक लाभदायक उत्तम तैल के भीतर होने चाहिए। मूल्य प्रति शीशी १)

अखण्ड—यह सुरमा दैनिक सेवन के वास्ते है। नेत्रों को

प्रायः रोगों से सुरक्षित रखता है, दृष्टि स्थिर रखता है, और शीतलता प्रदान करता है। मूल्य १ तोला ॥)

अखरौशन—नेत्र रोग यथा पानी जाना, धुन्ध, नया फोला, जाला, कुक्करे, पड़वाल आदि को दूर करता है। मू० १ तोला ॥।) नमूना –)॥

फोला क्योरा—यह सुरमा फोला के वास्ते विशेष रूप से हितकर है। धुन्ध, जाला, कुक्करे आदि को भी बहुत शीघ्र दूर करता है। मू० ८) रुपए तोला, ६ माशा ४), नमूना १)

पड़वाला क्योरा—पड़वालों के लिए विशेष रूप से हितकर है। पड़वालों को उखाड़ २ कर लगाया जाता है, तो फिर नहीं उगते। मू० ४) रुपए तोला, ६ माशा २), नमूना ३ माशा १)

मंजन नं० १—दन्त रोगों यथा रक्तस्राव, पानी लगना, दन्त पीड़ा, मुख दुर्गन्ध को हितकर है। दांतों को स्वच्छ करता है, मू० ।), नमूना –)

मंजन नं० २—विशेष कर दांतों की सफाई के लिए बनाया गया है। इसके मलते रहने से दांत मोतियों के समान चमकने लगते हैं। जिनके टारटर (मल) जम गया हो, वह उसे उतार कर मलते रहें तो फिर न जमेगा। मू० ।) नमूना –)

मंजन नं० ३ (कारबोलिक मंजन)—यह मंजन अंग्रेजी प्रकार का है। रंग गुलाबी, कारबोलिक टूथ पौडर है, दन्त कृमि नाशक है, दांतों को स्वच्छ करता है। जो विलायती मंजन को पसंद करते हैं, वह इसको सेवन करें। मू० ।) नमूना –)

मंजन नं० ४—हिलते हुए दांतों के लिए विशेष रूप से, और जबकि मसूढ़े पृथक हो रहे हों, गुणकारी है मू० ॥), नमूना =)

मुखरक्षक—मुख के छालों के वास्ते हितकारी है चाहे बालकों के हों, वा बड़ों को। मू० ॥), नमूना ।)

दवाई दाद—इसको चन्द दिन लगाने से दद्रु चाहे जहां हो अच्छा हो जाता है। चम्बल को भी गुणकारी है। बहुत कोमल स्थान पर जब कि खुजाया हुआ हो थोड़ी देर लगती है और दूसरी जगह नहीं लगती। लगा कर कोई काम बन्द नहीं करना पड़ता। मू० ४ ड्राम १), नमूना १ ड्राम ।)

हरदिल अज़ीज़—जिन लोगों के मुख में दुर्गन्धि आती है यद्यपि उन्हें ज्ञात न हो परन्तु कोई व्यक्ति उनके पास बैठकर बात करना नहीं चाहता। इन गोलियों को मुख में रख कर चूसते रहने से मुख की दुर्गन्धि दूर होकर सुगन्धि पैदा होती है। और दांत दृढ़ होते हैं। मू० ६० गोली १) नमूना =)

मसालह पान—हमने देखा है कि बाजारी पान विक्रेता प्रायः मलीन बर्तन आदि में सामग्री रखते हैं, इसलिए यह मसालह बनाया गया है, एक पानपर चुटकी रख दीजिए पान तय्यार है, वैसा ही रंग देगा, इसके अतिरिक्त मुख दुर्गन्धि को दूर करेगा, स्तम्भन करेगा, दांतोंको दृढ़ करेगा, कफादिको शुष्क करेगा मू०१) नमूना =)

गोली पान—वह लोग जो पान के बड़े २ पत्र मुख में डालने के बिना पान का आनन्द लेना चाहते हैं, वह मंगवावें शेष गुण "मसालह पान" के से हैं। मू० ६० गोली १), नमूना =)

गला क्यारा—यह गोलियां कंठ व छाती के रोगों के लिए रसायन है। जिनको शीघ्र २ स्वर भेद हो जाता है, उनके वास्ते गुणकारी है। श्वांस, कण्ठ, खाज, मुख में छाले, लाल जिह्वा इत्यादि को लाभदायक है। मुख में रख कर २–३ गोली प्रतिदिन चूसना चाहिए। मू० १६ गोली ॥)

बाल उड़ाने की अनुपम औषधि—इस को पानी में घोल कर लगाने से एक मिनट के भीतर कठोर से कठोर और कोमल से कोमल स्थान के बाल जड़ से दूर होते हैं। जिस २ ने मंगाया प्रशंसा की है। मू० फी डिबिया ।=), नमूना –)॥

रसबेला (बाल उड़ाने की दवाई) इस औषधि के लगाने से जिस स्थान के बाल चाहो पैदा कर सकते हो। मू० १)

काका तैल (दवाई बाल झड़) बाल झड़ने बन्द हो जाते हैं। मू० २ औंस २) नमूना ।)

मुख रोब (मूंछ बढ़ाने का तैल) यह तैल न केवल मूंछों को वरंच प्रत्येक स्थान के बालों को बढ़ाता है और उनको स्याह रखता है, अहा! रोबदार मूंछों वाला चेहरा कैसा भला मालूम होता है। मूल्य फी शीशी ३ औंस २), नमूना ।=)

चित्त मोहनी—इस उबटन को स्नान समय मलने से चेहरे के बुरे दाग, कील, छाइयां आदि दूर होकर चेहरा साफ होता है, झुरियां नहीं पड़तीं, चेहरे का रंग दिन प्रतिदिन निखरता जाता है, सूरत मनमोहनी हो जाती है। मू० १) नमूना =)

दिलसुन्दरी—यह स्नान के पश्चात् सेवन किया जाता है। एक प्रकार का तैल है, जो चेहरे को चमकाता है और दाग कीलादि को दूर करती है। यदि स्नान से पहले चित्तमोहनी और स्नान पश्चात् दिल सुन्दरी का सेवन हो तो बस कहना ही क्या है। मूल्य फी शीशी ॥|=), नमूना ।)

प्राणसुख—स्तनों को ढलकने से बचाता है, और ढलके हुए को प्रकृति अवस्था पर लाता, और कठोर व उन्नति करता है। भद्दे स्तन स्त्री के लिए दुखदाई हो जाते हैं। मूल्य ४), नमूना १)

पुरुषों के विशेष रोगों सम्बन्धी कुछ औषधियां।

पूर्ण सूची 'नपुंसकत्व' नाम की पुस्तक मुफ्त मंगाने पर मिलेगी।

इन औषधियों की प्रशंसा में सहस्रों प्रशंसापत्र मौजूद हैं

अकसीर नं० १ महत वाजीकरण औषधि--बहुत सी वीर्यवर्द्धक, उत्तेजक औषधियों का संग्रह है। नपुंसकता की सम्पूर्ण अवस्थाओं में हितकर है। यह पुरुषों के गुप्त रोगों के वास्ते जनरल औषधि है। शुक्रमेह, शीघ्रपतन, स्वप्नदोष, को बहुत लाभ दायक है। मूल्य ६४ गोली ४), ३२ गोली २), नमूना ८ गोली ॥)

अकसीर नं. २ लक्ष्मीविलास रस—वैद्यक में लिखा है कि यह रस नारद जी ने श्रीकृष्ण जी महराज को बताया था, दूध के साथ नित्य खावे तो बूढ़ा भी युवा के तुल्य होवे। कामदेव के समान हो जावे, सन्निपात, प्रमेह, भगन्दर, कण्ठशोथ, संग्रहणी, मरोड़, खांसी, जुकाम, बवासिर, सन्धिवात, कटिपीड़ा, नेत्रपीड़ा, दाग्निमान्द्य, घ्राण दुर्गन्ध, गलगण्ड, शिरपीड़ा, प्रदरादि को हितकर

है । ज्वर या अन्य रोग के पश्चात् जो निर्बलता, नपुंसकता, प्रमेहादि होता है । उसको विशेष रूप से हितकर है शुक्रमेह, स्वप्नदोष, शीघ्रपतन को लाभदायक है । मूल्य ६४ गोली ४)

अकसीर नं. ११—हृदय, मस्तिष्क, यकृति: आमाशय, मूत्राशय को पुष्टिदायक है, आनन्दवर्द्धक है, सुस्ती, शीघ्रपतन, स्वप्नदोष को हितकर है, याकूती का काम भी देती है, अमीरों के खाने योग्य प्रत्येक प्रकृति के अनुकूल इसका प्रधानांग स्वर्ण है । मूल्य ६४ गोली १०), १६ गोली २॥), नमूना ४ गोली ॥=)

अकसीर नं. १२—विशेषतया शीघ्रपतन रोगियों के वास्ते है । तीसरे पहर एक दो गोली दूध से खाने से पूरा प्रभाव होता है । नित्य सायं प्रात: एक गोली खाने से शीघ्रपतन की मूलवच्छेद होता है । इसके खाने वाले को खांसी, नजला जुकाम, कटि पीड़ा, वातज, कफज आदि रोग नहीं सताते । मूल्य ६० गोली ३), २० गोली १), नमूना ५ गोली ।)

अकसीर नं० १४—प्रमेह शीघ्रपतन तथा स्वप्नदोष नाशक है । कुसमय की अधिक रतूवत बन्द होती है मात्रा १ माशा सायं प्रात: दूध के साथ दें । मूल्य ३० तोला का ३), १५ तोले का १॥) है ॥

अकसीर नं० २० (मन्मथ रस)—वृद्ध को युवा और युवा को मल्ल बनाने के वास्ते यह योग शिवजी महाराज का निर्मित है। उत्तमता यह है कि तीव्र नहीं है । चिरस्थाई लाभ धीरे २ करता है । सदैव खाने में कोई हानी नहीं है। सुस्ती शीघ्रपतन, स्वप्नदोष, शुक्रमेह, को दूर करता है । खांसी नजला, जुकाम, श्वास, पाण्डु, कामला, अपाचन को हितकर है । रक्त उत्पन्न करता है । पौष्टिक उत्तेजक व स्तम्भक है । मूल्य ६४ गोली ४, ३२ गोली २), नमूना ८ गोली ॥)

अकसीर नं० २४ सुखकारक—शीघ्रपतन रोगी का जब तक रोग दूर न हो कभी २ तीसरे प्रहर दूध के साथ खावें, पश्चात् कोई खट्टी लवणयुक्त वस्तु न खावें, चौगुना असर होता है । मूल्य ३२ गोली २), नमूना ४ गोली ।)

अकसीर नं० २७—······पश्चात् एक दो गोलियां खा

लीजिए उदासी दूर, सुस्ती चकनाचूर, बल ज्यों का त्यों। नित्य दूध के साथ सायम् प्रातः खावें, तो शीघ्रपतन को हितकर है। मूल्य ६० गोली १), नमूना =)

अकसीर नं० २७ (ख)—जिसमें कस्तूरी डाली है। मूल्य ६४ गोली ४), ३२ गोली २)

अकसीर नं० ३० (धातुवर्धक)—इससे वीर्य बहुत बढ़ता है, और पुष्ट होता है, शुक्रमेह, स्वप्नदोष, शीघ्रपतन को भी हितकर हैं। मूल्य २) पाव, नमूना ५ तोला ॥)

अकसीर नं० ३१ चन्द्रप्रभा वटी—यह वैद्यक योग विविधि नामों से बड़े २ वैद्य बेच रहे हैं, २० प्रकार के प्रमेह, पथरी, अफारा, शूल, मन्दाग्नि, अण्डवृद्धि, पाण्डु, कामला, बवासीर, भगन्दर, नासूर, कटिपीड़ा, कास, श्वास, हिक्का, डकार, नजलादि को हितकर हैं। वीर्य को शुद्ध करके सन्तानोत्पत्ति के योग्य बनाती है। मूल्य ३२ गोली १), नमूना ८ गोली ॥)

अकसीर नं० ३३ आयुर्वेदिक टानिक—स्त्री पुरुष के रज वीर्य को शुद्ध करके सन्तानोत्पत्ति के योग्य बनाती है। यह गोलियां पौष्टिक, बलवर्द्धक, सन्धिवात नाशक, हैं और कटिपीड़ा गुल्फपीड़ा, पार्श्वशूल, रींघ्रनवायादि सर्व वातज कफज रोग मिटाती हैं। मूल्य ६४ गोली ४), ३२ गोली २), नमूना ८ गोली ॥)

अकसीर नं. ३४ (क)—धातुस्राव के वास्ते यह अद्वितीय औषधि है। स्वप्नदोष, शीघ्रपतन को भी शीघ्र दूर करती है। मूल्य ३२ गोली २), नमूना ८ गोली ॥)

अकसीर नं० ३९—शुक्रमेह शीघ्रपतन व स्राव को दूर करती है शारीरिक बल को अधिक करती है मस्तिष्क को लाभ पहुंचाती है। लेसदार औषधि होने पर भी क़ाबिज़ नहीं है। इसके खाने से प्रकृति स्तम्भन बढ़ता है। मूल्य प्रति पाव २), आधा पाव १), नमूना १ छटांक ॥)

तिला नं. १—कुछ सुगन्धी युक्त है, बूढ़ों को विशेष रूप से लाभकारी है, जो शौकिया बल बढ़ाना चाहें यह तिल. हितकर है, मूल्य ४ डराम ५), नमूना १ डराम १),

तिला नं. ३—अपना आप गंवाने वालों को विशेष रूप से हितकर है। साधारण अवस्था में बहुत गुण करता है। मूल्य १) रुपया नमूना ।)

तिला नं. ४—यह बड़ा भारी प्रचण्ड है चरम का एक परत उतार देता है, परन्तु नसों पट्ठों को बहुत शीघ्र ठीक करता है। ध्वजभंग, नपुंसकत दूर करके पूरा बलप्रदान करता है। मू० ३), न० ॥।)

तिला नं. ६ (स्थूली करण)—स्थूलता के लिये है। मूल्य ४), आधी शीशी २), इससे कम नहीं भेजा जाता।

स्त्रियों व बालकों की कुछ औषधियां

अबलाराम—हर प्रकार का प्रदर लाल, पीला, श्वेत इससे दूर होता है। कटि पीड़ा, सोम रोग आदि को भी हितकर है, मूल्य ३२ गोली २), नमूना ।)

पताली—मासिक का कम होना, वा न आना, वेदना सहित आना और तत्सम्बन्धी सर्व रोगों को दूर कर के गर्भाशय को गर्भ धारण योग्य बनाती है और बल प्रदान करती है। मू० २), नमूना ॥)

सोमावती—स्त्रियों को जो श्वेत पानी जाता है, चाहे किसी प्रकार का और किसी दर्जा का हो, इस से आराम आ जाता है। मूल्य २४ मात्रा २), नमूना ८ मात्रा ॥।)

गर्भ चिन्तामणि रस—गर्भिणी के सर्व रोग, ज्वर, कास, अजीर्ण, शोथ, जी मचलाना, वमन, अतिसार, उदरशूल, शीतादि को लाभ करता है। गर्भिणी की कोई भी व्याधि हो इस से लाभ होता है। मूल्य ३२ गोली २), नमूना ४ गोली ।)

रक्त स्तम्भक—जब रक्त ऋतुकाल के अतिरिक्त जारी हो तो तीन दिन के सेवन से बन्द होगा, मात्रा, ६ दिनकी २), ३ दिनकी ॥।)

गोदभरी—जब कि पुरुष का वीर्य ठीक ही यह गोली स्त्री को खिलाई जाती है। प्रथम तो प्रथम ही मास, अन्यथा चौथे मास के भीतर ईश्वर की कृपा से गर्भ स्थित होजाता है। मूल्य ५)

अबला सुख—यह औषधि स्त्रियों के अनेक रोगों को गुण कारी है, जो स्त्रियां निर्बल हो, दिनों दिन रोगी रहें, यह दवाई गुण करती है। मूल्य ४० गोली ३), नमूना १० गोली ॥।),

अबलानन्द—इस के भी उपर्युक्त गुण हैं और पित्त प्रकृति वाली स्त्रियों के लिये है। मूल्य ४० खुराक ३), नमूना ।॥)

मन रंजन (हिस्ट्रिया की दवाई)—स्त्रियों के इस रोग की अनुभूत औषधि है। मूल्य ६४ गोली ४), नमूना १६ गोली १)

ब्रह्मपुत्र रस (अठरा की औषधि)—अठरा से जो सन्तान छोटी अवस्था में मर जाती है उसकी दवाई। मू० ७०७गोली१०)

सुखजनाई—इस औषधि को केवल कटि पर बांधने से बालक सुगमता से उत्पन्न होता है। मूल्य १)

गर्भ प्रतिबन्धक—जब कभी गर्भवस्था में स्त्री के प्राणों का भय हो, तो ऐसे यत्न की आवश्यकता पड़ती है कि गर्भ न ठहरे। मूल्य २)

बाल सुख—यह बालकों के वास्ते टानिक औषधि है। मदाग्नि कोष्टबद्धता, हरे पीले दस्तों का आना, ज्वर, तृषा, कृषता, बालक का सूखते जाना और सदैव रूग्ण रहना, पित्ताधिकता सब दूर होते हैं। मूल्य ६४ गोली १), नमूना ८ गोली =)

काकड़सत--बालकों को प्रायः होने वाले रोग, तथा अजीर्ण अतिसार, ज्वर खांसी आदि को हितकर है।प्रत्येक बालकों वाले गृह में होना चाहिए। मूल्य ॥), नमूना =)

दूधजा--दूध सुखाने की दवाई। मूल्य २) नमूना ॥)

दूधला--दूध बड़ाने की दवाई। मूल्य ७ तोला १)

मान--विषय वासना को दूर करनेवाली है। मूल्य २)

पसलीनी--बालकों के डब्बा अर्थात् पसली रोग के वास्ते यह औषधि अति गुणकारी है। मूल्य ३२ गोली ४), नमूना १)

सरसोब--इस औषधि को गले में बांधा जाता है। बच्चों के दांत आसानी से निकलते हैं। मूल्य १)

मुश्कबेद--मृगी रोग प्रायः बालकों को हो जाता है। बड़ा दुष्ट रोग है। ईश्वर इस से रक्षा करे। इस औषधि से प्रायः १४ दिन में आराम आता है। मूल्य १४ गोली २)

बाल-विरेचन--बालकों को सहल और सुगमता से दस्त होता है। मूल्य ६४ गोली १), नमूना ८ गोली =)

काली दूर--यह औषधि काली खांसी के लिये परीक्षित है। मूल्य १६ गोली ॥)

भयानक रोग आतशक व सोज़ाक

उसके दर्जे, और उस पर जो औषधियां देशोपकारक औषधालय में वर्ती जाती हैं, उनमें से कुछ लिखते हैं

आतशक—उपदंश कठिन रोग है। यदि लापरवाही की जाय, तो पीढ़ियों तक पीछा नहीं छोड़ता उपदंश नर तथा मादीन के भेद से दो प्रकार का होता है। नर उपदंश में गहरे घाव केवल लिंग पर होते हैं, मादीन आतशक का विष रक्त में प्रविष्ट हो जाता है और शरीर पर फूट पड़ता है। इसका पहला घाव साधारण होता है। इसके तीन दरजे होते हैं। पहिले दर्जे में घाव केवल जननेद्रिय पर होता है। दूसरे में शरीर पर काले दाग, ताम्र रंग की फुंसियां और छोटे २ घाव आदि निकलते हैं। तीसरे दर्जे में हड्डी तक प्रभाव चला जाता है। बड़े २ घाव कुष्टवत होते हैं। आतशक के वास्ते कई औषधियां तैयार रहती हैं। साधारण रूप से यह हैं। अपनी अवस्थानुसार मंगवा लें। या सब वृत्तान्त १) फीस के साथ आने पर हम स्वयं निश्चित करते हैं।

उपदंशौषधि नं. १३ - उपदंश नर तथा मादीन को १४ दिन में आराम करती है। अव्वल दर्जे में अकसीर है। दूसरे दर्जे में भी गुणकारी है। मूल्य ४), आधी २),

उपदंशौषधि नं. १४—इससे २० या अधिक से अधिक ४० दिन के भीतर आराम आता है। दर्जा अव्वल में अद्वितीय है। मूल्य ४० गोली ४)

उपदंशौषधि नं. १६ (उपदंश विरेचन)—जब कि रोग जीर्ण हो चुका हो, या ऐसा दुःसाध्य हो, कि आराम न आता हो, तो पहिले जुल्लाब लेना उचित होता है। जब असूज, कार्तिक या चैत्र फाल्गुण के उपदंश के फूटने का भय हो, तो ऋतु के आरम्भ में यह विरेचन ले लें। मूल्य ६ माशा १)

उपदंशौषधि नं. १७—यह औषधि द्वितीय तृतीय दर्जा उपदंश दुःसाध्य जीर्णोपदंश के घाव, फोड़ा, फुंसी, व्रणादि को हितकर है, तालू छिद्र को भी गुणकारी है। नासूर को दूर करती है। मूल्य ६४ गोली ४), ३२ गोली २)

सारसारिष्ट मिश्रित—बहुत सी वैद्यक औषधियों का संग्रह है। उपदंश द्वितीय, तृतीय दर्जे में हितकर है। फोड़ा, फुंसी, दाग़, चम्बल, दाद, कृष्णदाग़, ताम्रवर्ण, धप्पड़ खुजली, आदि व अन्य किसी भी रक्तदोष को दूर करके शरीर को कुन्दनवत करता है। मू० ३ औंस २), नमूना ।=)

सोजाक—सोज़ाक में पहले जलन व पीड़ा होती है, नितान्त कष्ट होता है। दूसरे दर्जे में पीप आना आरम्भ होती है, कुर्रह हो जाता है। जलन धीरे २ बंद हो जाती है और केवल पीप जाती है वा तार से निकलते हैं। इससे भी बढ़ जावे तो, तीसरे दर्जे में मुत्रावरोध हो जाता है मूत्र की नाली संकीर्ण हो जाती है। कभी २ मूत्र रुक जाता है। तीसरे दर्जे में पहुंचा हुआ सोज़ाक बड़ी मुश्किल से दूर हो सकता है और जीर्ण हो जावे तो जाता ही नहीं। सोजाक के वास्ते बहुत सी औषधियां तैयार रहती हैं, अवस्थानुसार दी जाती हैं। साधारणतः यह हैं:—

औषधि सोजाक नँ. १ (सोज़ोशाफ)—प्रथम दर्जे में रामवाण का काम देती है। २४ घंटे के भीतर जलन दूर होती है। कष्ट कम होता है, थोड़े दिनोंमें पूर्ण लाभ होता है। मू० ४ ड्राम१)न०।)

औषधि सोज़ाक नं. २ (चिनाक)—बड़े ही अनुभवों के पश्चात् हमारा स्वयं निर्माणकृत यह योग अकसीर सोज़ाक व कुर्रह है जो कि सोज़ाक की प्रत्येक अवस्था में गुणकारी है। दाह भी हो, पीप हो या दोनों मिले हुए हों, सबको अकसीर है। शुक्रमेहादि को हितकर है। मू० ६० गोली ४), नमूना १५ गोली १)

औषधि सोज़ाक नं. ३—यह औषधि केवल कुर्रह अर्थात् पीप जाने पर दी जाती है। एक ही दिन के भीतर पीप बन्द होनी आरम्भ होती है। इसके अतिरिक्त उपदंश को हितकर है। मू० २), नमूना ।)

अर्श, प्लीहा, हृदय, यकृत, उदर आदि की औषधियां।

यूं तो अर्श (बवासीर) ६ प्रकार की होती है, परन्तु बड़े दो ही भेद हैं, रक्तार्श व वातार्श। कभी पैतृक भी होती हैं, जो कष्ट साध्य है। प्रसिद्ध औषधियां लिखी जाती हैं।

अर्शौषधि नं० ३—यह खूनी व बादी दोनोंको हितकर है। मूल्य ४० गोली २), नमूना ।)

अर्शौषधि नं० ७—यह विशेष कर रक्तार्श को लाभदायक है। ७ दिनके भीतर रक्त बन्द हो जाता है और ३ सप्ताह में पूर्णतया लाभ होता है। मूल्य ४० गोली२), नमूना ।)

अर्शौषधि नं० ९—यह औषधि बलवर्द्धक, शीघ्रपतन, स्वप्न दोष, शुक्रमेहादि को भी लाभदायक है, विशेषकर रक्तार्श के लिए उपयोगी है। मूल्य ३० गोली ५), ६ गोली १)

अर्शौषधि नं० १०—बवासीर खूनी बादी को विशेष कर जब कि कोष्टवद्धता साथ रहती हो, अद्धितीय है। मूल्य २), न. ।)

प्लीहा—मलेरिया ज्वर अधिक देर रहने से तिल्ली बढ़ जाती है। ज्वर हट जाने पर भी तिल्ली बनी रहती है। कभी उदर की अन्य खराबियों से तिल्ली बढ़ती है। निम्नलिखित औषधियां प्रायः देते हैं।

प्लीहोदरौषधि नं० २—यह औषधि उस समय दी जाती है, जबकि आमाशय निर्बल हो, तिल्ली साधारतः बड़ी हो। मू० २)न० ।)

प्लीहोदरौषधि नं. ३—पौष्टिक है चेहरे को शीघ्र लाल करती है, बल को बढ़ाती है, अग्नि संदीपन है। मलेरिया के पुराने कीटाणु दूर होते हैं सब प्रकार की तिल्ली दूर होती है। मात्रा २ रत्ती। मूल्य ६ माशा ४) रु० १॥ मा० १ रुपया

प्लीहारि रस नं. ५—प्लीहा के साथ कोष्टवद्धता हो या तिल्ली बहुत ही पुरानी हो तो यह औषधि गुणदायक है। दूसरी किसी भी औषधि के खाते समय इस औषधि को जारी रक्खा जा सकता है। मूल्य ६० गोली १), नमूना ।)

प्लीहोदरौषधि नं. ६—उस दशा में विशेष रूप से हितकर है, जब कि ज्वर भी साथ हो या कभी २ हो जाता हो। यकृत विकार को भी लाभ करती है। मूल्य १) नमूना ।)

हयात अफ़ज़ा—हृदय की निर्बलता और धड़कन के वास्ते अनुपम औषधि है। मास में आराम आता है। मू० २), नमूना ।=)

हृदार्णवरस—हृदय की निर्बलता, धड़कन, हृदय के मेद को हितकर है। मू० १६ गोली २)

मण्डूर वटिका—यरक़ान पांडुरोग यकृत निर्बलता इत्यादि के लिए अक्सीर है। मूल्य १६ गोली १)

शर्करारि—मधुमेह, जिसमें शक्कर आती है विशेष कर उसके लिए हितकर है। मू० ४), नमूना १)

लाल जवाहर—उदर पीड़ा, गुड़गुड़ाहट, वमन, विषूचिका अतिसारादि रोगों को हितकर है। पाचन शक्ति खूब बढ़ती है। मू० २), आधी शीशी १), नमूना ।)

दीपाचन—पाचन के लिए अक्सीर है। कफ़ व वादी को दूर करने वाली भोजन को पचाने वाली, भूख को बढ़ानेवाली, उदरशूल, अफारा, वमन इत्त्यादि को दूर करने वाली है। मूल्य ॥)

एलवासा—शूल, पेट की वादी, गुड़गुड़ाहट, अफारादि को हितकर, क्षुधावर्द्धक है, कोष्टवद्धता दूर करता है। मू० १), न० =)

दत्तविरेचन—यय गोलियां जुलाब के लिए अनुपम हैं, एक गोली रात को सोते समय खाने से प्रातः खुल कर १-२ शौच हो आते हैं। मूल्य ६४ गोली १) रुपया, नमूना =)

आराम जान—इससे विरेचन नहीं होता, केवल शौच खुल कर आता है, और प्रतिदिन खाने से अन्त्रियों का बल बढ़कर सतत कोष्टबद्धता दूर हो जाती है। मूल्य ३२ गोली १), १६ गोली ॥)

श्री पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य रचित सर्व साधारण के उपयोगी स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

काम व रतिशास्त्र (प्रथम भाग)—इसके भीतर २४५ हस्त लिखित चित्र और ५० फ़ोटो के चित्र हैं। स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध पर आज तक ऐसी कोई दूसरी पुस्तक नहीं लिखी गई है। मू० ६), उर्दू ५)

क्या हम लड़का या लड़की अपनी इच्छानुसार उत्पन्न कर सकते हैं?—इच्छानुसार सन्तानोत्पत्ति करने के विषय में आज तक के वैद्यक, यूनानी, डाक्टरी, कुल अनुसन्धानों का पृथक् २ वर्णन है। मू० ।)॥, उर्दू =)॥

घर का वैद्य—घरों में बूढ़े, जवान अथवा बालक स्त्री पुरुषों को होने वाले सम्पूर्ण छोटे बड़े रोगों और अचानक होने वाली घटनाओं के लिए प्रयोग बता देती है। मू० ।)॥, उर्दू =)॥

क्या मैं स्वस्थ हूँ—आज तक हिन्दी भाषा में कोई ऐसी पुस्तक नहीं लिखी गई। मर्द, औरत, बच्चा, बूढ़ा, जवान, तन्दुरुस्त बीमार हर एक को ऐसी पुस्तकों के नियमों को जानना चाहिए। मू० ॥।), उर्दू ॥)॥

मीठी निद्रा—जीवन का तृतीयांश से अधिक निद्रा में व्यय होता है पढ़ो और आयु को बढ़ाओ। मू० १।), उर्दू ॥।)॥

स्वास्थ्यरक्षा के दस नियमों का वर्णन—यह एक अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद है। साधारण नियमों के पालन से स्वास्थ्य प्राप्त होता है और बुढ़ापे में भी जवानी का आनन्द आ सकता है। मू० ॥।), उर्दू ।=)॥

ऋतुचर्या—इसमें ६ ऋतुओं का सविस्तर वर्णन, इनका मनुष्यों पर प्रभाव, ऋतु अनुसार रोगादि का वर्णन और इलाज रहन सहन, खाने पीने, पहिननेके नियम उत्तमता से वर्णन किए हैं। मू० १।), उर्दू ।॥)॥

पुस्तकें मिलने का पता—अमृतधारा लाहौर।

भोजन और स्वास्थ्य—भोजन सम्बन्धी अज्ञान के कारण वर्णन हैं। मू० १।), उर्दू ॥।)॥

दूध और दूध की वस्तुयें—इसमें दूध और दूध से बनने वाली तमाम वस्तुओं का वर्णन है। मू० १॥), उर्दू १।)

मेरे डाक्टर चचा ने मुझे गृहस्थ की शिक्षा कैसे दी—एक बालक को उसके डाक्टर चचा ने गृहस्थ के कार्यों की शिक्षा बहुत ही उत्तम प्रकार से दी है। मूल्य ।), उर्दू –)॥

वीर्य—इसमें वीर्य्य के सम्बन्ध में पूरा ज्ञान, स्त्री व पुरुष की जननेन्द्रियों का आवश्यक वर्णन और स्त्री के वीर्य्य सम्बन्धी पूर्ण व्याख्या है। मूल्य ॥=), उर्दू ।=)॥

हर्ड़—हर्ड़ का सम्पूर्ण व्याख्या और सेवनविधि दरज है। मूल्य ।), उर्दू –)॥

ब्राह्मी—इसमें ब्राह्मी का पूरा वर्णन करके सेवन करने के कई उपाय लिखे गए हैं। मूल्य –), उर्दू)॥

शीघ्रपतन—सविस्तार चिकित्सा और सर्व प्रकार के योग भी दिए गए हैं। मूल्य ।=)॥, उर्दू ।–)॥

मलेरिया ज्वर का वर्णन—मलेरिया के विषय में आज तक का अनुसन्धान, रोग लगने की विधि, उसके कारण लक्षण दिए हैं। मूल्य ॥=), उर्दू ।–)॥

स्थानाभाव के कारण पुस्तकों के नाम व कीमतें लिखते हैं

डाक्टर लुई कोहनी के चार स्नान =)॥, भारतवासियों की शारीरिक निर्बलता ॥।)॥, प्लेग प्रतिबन्धक ॥=), प्रसूतकाल ॥=) शिशुपालन १), रस हृदय तन्त्र ॥), कोष्टबद्धता ॥।), सोज़ाक ॥।), हिस्ट्रिया ॥), दोषज्ञान ॥।), शीतला १), इन्फ्ल्यूएञ्जा ॥), विषचिकित्सा प्रथम भाग ।≡), विष चिकित्सा द्वितीय भाग १।=), प्रदर रोग ।–), गुप्त प्रकाश २॥)

पुस्तकें मिलने का पता: अमृतधारा लाहौर।

१००००–५—३०

AMRITDHARA
अमृत धारा
امرت دھارا
PARTICULARS FROM:— AMRITDHARA, LAHORE